त्यौहार और व्रत

- पं.श्रीराम शर्मा आचार्य

त्यौहार और व्रत

*

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१५ मूल्य : १९.०० रुपये

भूमिका

भारतीय संस्कृति का जन्म व्यक्ति को तथा समाज को सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से हुआ है। उसके प्रत्येक सिद्धांत, आदर्श एवं विधि-विधान की रचना इसी दृष्टि से की गई है कि उसका प्रभाव जनमानस को ऊँचा उठाने एवं परिष्कृत बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध हो।

षोडश संस्कारों में जन्म-काल के जात-कर्म, नामकरण संस्कार से लेकर यज्ञोपवीत, विवाह एवं अंत्येष्टि संस्कार तक सभी की रचना ऐसी है कि जिस व्यक्ति के लिए यह संस्कार प्रयोग किए जाएँ, उस पर वेद-मंत्रों की सूक्ष्म शक्ति से, दैवी कृपा से, संस्कार में प्रयुक्त मंत्रों में दी जाने वाली महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं से तथा उस कर्मकांड के प्रदर्शनात्मक प्रभाव के कारण मनोवैज्ञानिक रूप से अच्छा प्रभाव पड़े। व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने का उद्देश्य ही इन संस्कारों का प्रधान हेतु है। जिस समय इस षोडश संस्कारों की विद्या को लोग भली प्रकार जानते थे, उस समय इन विधि-विधानों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव, दैवी अनुग्रह एवं शिक्षाओं के द्वारा वस्तुतः व्यक्ति को सुसंस्कारी बना देते थे। व्यक्तिगत चरित्र-निर्माण एवं मनोभूमि को सुव्यवस्थित बनाने की दृष्टि से षोडश संस्कार भारतीय संस्कृति की एक महान् देन हैं।

जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की वैयक्तिक मनोभूमि-निर्माण के लिए षोडश संस्कारों की रचना हुई है, उसी प्रकार सामूहिक जीवन को, सारे समाज को सुसंस्कृत बनाने के लिए ऋषियों ने अनेक त्यौहारों की रचना की है। हिंदू-धर्म का प्रत्येक त्यौहार एक आदर्श, सिद्धांत एवं प्रेरणा को लिए हुए है। समाज पर उन

सिद्धांतों की छाप डालने के लिए सामूहिक आयोजनों, उत्सवों, उल्लासों एवं सम्मेलनों के द्वारा यह प्रयत्न किया गया है कि लोग उस प्रकार की प्रेरणा ग्रहण करके उसे अपने जीवन में ढालें। केवल समझाने-बुझाने, लिखने-पढ़ने, सुनने-सुनाने से वह प्रभाव नहीं पड़ता, जो बड़े प्रदर्शनों एवं उत्सवों का पड़ता है। जन-समुदाय बड़े रूप में, सामूहिक रूप में, जिस उत्सव को मनाता है, उससे उस उत्सव में भाग लेने वाले लोग निश्चय ही प्रेरणा एवं प्रकाश ग्रहण करते हैं।

जन-जीवन को सच्चरित्रता, आदर्शवाद, सेवा, सद्भावना, सहयोग एवं सज्जनता से परिपूर्ण करने वाली प्रेरणाओं से भर देना त्यौहारों एवं व्रत पर्वों का मूल उद्देश्य है। इन उद्देश्यों की पूर्ति बहुत कुछ हो सकती है, यदि इन्हें ठीक प्रकार मनाया जाए। जब तक लोग इन्हें उचित रीति से मनाते रहे, तब तक उन्हें जीवन को महान् बनाने की प्रेरणा समुचित रीति से प्राप्त होती रही और भारतीयों का मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्तर असाधारण रूप से ऊँचा रहा। अब इन त्यौहारों को मनाने की प्रेरणाप्रद प्रक्रियाएँ नष्ट हो गईं और चिह्न पूजा मात्र शेष बची है। इसलिए वे व्यर्थ का व्यय भार बढ़ाने वाले आडंबर मात्र बने हुए हैं। पकवान, मिष्ठान्न बनाकर खा लेना या और कोई छोटा-मोटा धार्मिक कर्मकांड एक लकीर पीटने के रूप में कर लेना-बस इतनी-सी बात त्यौहार मनाने को शेष रह गई है। यह स्थिति वस्तुतः बड़ी निराशा की है। जिस देश, जाति की प्राचीन प्रेरणाएँ शिथिल या दुर्बल हो जाती हैं, वह समाज भी दुर्बल होने लगता है।

यदि हमें अपनी संस्कृति का पुनरुत्थान करके, भारतीय जन-समाज को प्राचीनकाल जैसे उच्च स्तर पर पहुँचाना हो, तो त्यौहार एवं पर्वों को मनाने की उस प्राचीन परिपाटी को पुनः जीवित करना पड़ेगा। यों प्रत्येक पर्व को मनाने की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। देश, काल-भेद से भी इनके मनाने की विधियों में अंतर है। उन सबका एकीकरण और समन्वय करने की

आवश्यकता है, ताकि सारे देश में एक ही विधि-व्यवस्था से, एक ही रीति-नीति से, इन पर्वों को मनाया जाना संभव हो सके। इसके लिए विभिन्न प्रदेशों के प्रतिनिधियों द्वारा एकत्रित होकर पृथक्-पृथक् स्थानों में प्रयुक्त होने वाले रिवाजों में से जितने-जितने अंश उत्तम लगें, उन्हें चुनकर एक सार्वदेशिक विधि इन त्यौहारों को मनाने की घोषित कर दी जाए। इस प्रकार हमारे प्रत्येक पर्व-त्यौहार को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एकरूपता एवं आध्यात्मिक श्रेष्ठता उत्पन्न करने का माध्यम बनाया जाए।

एक बात तो अभी से तुरंत ही आरंभ की जानी चाहिए कि इन पर्वों पर स्थानीय जनता एक जगह एकत्रित होकर उस पर्व का सामूहिक विधि-विधान पूरा किया करे और उस त्यौहार के पीछे जो इतिहास एवं आदर्श है, उसे भजन, कीर्तन, उपदेश, अभिनय आदि प्रक्रियाओं के द्वारा अपने अंतःकरण में उतारने का सामूहिक आयोजन किया करे। हमारा हर पर्व एक सार्वजनिक सामूहिक सम्मेलन का रूप धारण करे। इन दिनों राजनैतिक सभा-सम्मेलनों की या किन्हीं आंदोलनकारी आयोजनों की ही सामूहिक चेतना, जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ती है। अब सांस्कृतिक सामुदायिक योजनाएँ आरंभ की जानी चाहिए। नैतिक और सांस्कृतिक वातावरण पैदा करने के लिए जनता को प्रबुद्ध एवं तत्पर करना चाहिए, इसके लिए हमारे पर्व और त्यौहार एक श्रेष्ठ माध्यम हैं। षोडश संस्कारों की भाँति सोलह त्यौहारों को इस पुस्तक में प्राथमिकता देते हुए आरंभ में लिखा गया है। इसके बाद सामान्य व्रत, पर्वों को साधारण परिचय की तरह परिशिष्ट रूप में दे दिया है। बहुत अधिक पर्व, त्यौहार मनाने से मनुष्य ऊब जाता है और सभी को एक-सी दृष्टि से देखता है। इसलिए चुने हुए त्यौहारों को ही पूरी तत्परता एवं उत्साह के साथ मनाया जाना चाहिए। इस दिशा में मार्गदर्शन के रूप में यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
■ हमारे त्यौहार और पर्व	७
१. नवीन संवतसर	१६
२. नवरात्रि	२०
३. राम नवमी	२३
४. गंगा दशहरा और गायत्री-जयंती	२७
५. हरियाली तीज	३१
६. श्रावणी और रक्षा-बंधम	३४
७. जन्माष्टमी	३८
८. गणेश चतुर्थी	४१
९. सर्व पितृ अमावस्या	४५
१०. विजया दशमी	४८
११. दीपावली	५२
१२. भैयादूज अथवा यमद्वितिया	५६
१३. गोपाष्टमी	५८
१४. बसंत पंचमी	६१
१५. महा शिवरात्रि	६४
१६. होली	६६
१७. अक्षय तृतीया	७३
१८. निर्जला एकादशी	७६
१९. ऋषि पंचमी	७९

२०. अनंत चतुर्दशी ८२
२१. गोवर्धन और अन्नकूट ८५
२२. देवोत्थान एकादशी ८८
२३. भीष्म पंचक ९०
२४. मकर संक्रांति ९२
२५. शीतला अष्टमी ९४
२६. अन्य व्रत और त्यौहार ९७

(अक्षय नवमी, अचला सप्तमी, अरुंधती व्रत, अहोई आठें, कजरी व्रत, करवा चौथ, कोजागर व्रत, गनगौर, चंडिका व्रत, चंद्रायण व्रत, तुलसी विवाह, दत्तात्रेय जयंती, नाग पंचमी, माघी पूर्णिमा, मौनी अमावस्या, लोकार्कषष्ठी, वट सावित्री व्रत, संतान सप्तमी, सत्यनारायण व्रत, हरितालिका व्रत, हनुमान जयंती आदि-आदि।)

हमारी संस्कृति के स्तंभ

त्यौहार और व्रत

हमारे त्यौहार और पर्व

यह विश्व-प्रकृति, जिससे मानव तथा अन्य समस्त प्राणियों और भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति हुई है, एक विशेष नियम से बँधी है। उस नियम के अनुसार ही मानव-प्रकृति का भी विकास हुआ है। इस व्यापक नियम के नियंत्रण में ही हमको दिखलाई पड़ने वाले इस जड़-चैतन्य संसार के सब कार्य चल रहे हैं। इन्हीं नियमों को, जिनके आधार पर यह विश्व-संसार टिका हुआ है, जान लेना और उनके अनुकूल व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की व्यवस्था करना यही भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सार है। यहाँ के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने समाज और व्यक्तियों के लिए जो आचरण और कर्तव्य नियत किये हैं, उन सबमें इसी गहन तत्त्व को दृष्टिगोचर रखा गया है। वे जानते थे कि मनुष्य का समस्त जीवन इन्हीं नियमों की एक शृंखला के रूप में है, इसलिए उसका कोई भी कार्य इनके विपरीत नहीं होना चाहिए अन्यथा प्रकृति उसे अवश्य दंड देगी। इसलिए उन्होंने हमारे छोटे-बड़े सभी कर्तव्यों और प्रातःकाल से लेकर शयन-काल तक के दैनिक कृत्यों को धर्म का रूप दे दिया, जिन पर आचरण करके ही हम सुख और शांति प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार हिंदू शास्त्रों में हमारे व्यक्तिगत कृत्यों को धर्म का रूप दिया गया है, उसी प्रकार सामाजिक कार्यों को भी धर्म का अंग बना दिया गया है, जिससे लोग उनके पालन में ढिलाई न करें और उनसे यथोचित प्रेरणा प्राप्त करते रहें। त्यौहार, धार्मिक और सामाजिक उत्सव तथा व्रत आदि का विधान वैसे

संसार की सभी जातियों और देशों में पाया जाता है। सभी मजहबों के संस्थापकों और आचार्यों ने कुछ ऐसे विशेष दिन नियत कर दिये हैं, जिन पर वे अपने विशेष मनोभावों को प्रकट करने के लिए कुछ विशेष कृत्य करते देखे जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार मनुष्य सदा एक ही रस में रहना पसंद नहीं करता। अगर वह वर्ष के ३६५ दिन नित्य प्रति के कार्यों और नियमित व्यवसाय या नौकरी आदि में ही लगा रहे, तो उसके चित्त में अवश्य उद्विग्नता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि उसको बीच-बीच में कभी ऐसा अवसर मिलता रहे, जिससे वह अपने जीवन में कुछ नवीनता तथा आमोद-प्रमोद का अनुभव कर सके और विश्राम भी पा सके।

अन्य समस्त जातियों के त्यौहारों की भाँति उपर्युक्त सब उद्देश्य हिंदू-जाति के त्यौहारों में भी पाये जाते हैं। पर हमारे यहाँ इतनी विशेषता और है कि त्यौहारों को केवल छुट्टी का अथवा धर्माचार्यों की जयंती आदि का दिन ही न समझकर, उससे मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक विकास का भी उद्देश्य सिद्ध किया है। सच पूछा जाए तो हिंदू-जाति अपनी प्राचीन सभ्यता और आचार-विचार को इतनी शताब्दियों के परिवर्तन के बाद भी जो अभी तक कायम रख सकी है, इसका बहुत कुछ श्रेय इन त्यौहारों और उत्सवों को ही है। साधारण जनता धर्म के गंभीर उपदेशों को नहीं समझ सकती और न आध्यात्मिक तत्त्वों पर अमल कर सकती है। उसको शिक्षा देने और सुमार्ग पर चलाने का एकमात्र मार्ग धार्मिक कथा-कहानी श्रवण कराना और मनोरंजन के साथ धार्मिक-कृत्यों के करने की विधि बतलाना ही है। यह उद्देश्य त्यौहारों और व्रतोत्सवों आदि से ही सुगमतापूर्वक सिद्ध हो सकता है।

त्यौहारों की स्थापना मुख्यतः अग्रलिखित उद्देश्यों को लेकर की गई है—

(१) जनता में जागृति, सद्भावना, ऐक्य, संगठन की वृद्धि करना, लोगों को सुसंस्कृत, शिष्ट और सुयोग्य नागरिक बनाना, उनमें सच्ची सामाजिकता की भावना उत्पन्न करना।

(२) किसी विशेष अवसर पर बड़े यज्ञ के लिए। यद्यपि शास्त्रों के मतानुसार 'यज्ञ' शब्द का अर्थ परोपकार के कार्यों के लिए होता है, तथापि वैदिककालीन पर्वों और उत्सवों में यज्ञ का अर्थ बड़े हवन से ही लिया जाता है।

(३) किसी विशेष ऋतु के परिवर्तन या फसल के तैयार होने पर सामाजिक समारोह के रूप में।

(४) सर्व-साधारण के मनोरंजन और हृदयोल्लास-प्रकाश के लिए।

(५) किसी युग-प्रवर्तक महापुरुष, अद्वितीय कर्मवीर, शूरवीर, प्रणवीर, दानवीर, महान् विद्वान्, आदर्श प्रतापी की अथवा किसी महान् राष्ट्रीय घटना की स्मृति मनाने के निमित्त।

हमारे तत्त्ववेत्ता, पूज्यपाद ऋषि-महर्षियों ने ऊपर बतलाये चारों उद्देश्यों के अनुकूल अनेक त्यौहार और पर्व के दिवस नियत कर दिए हैं और उन सबमें लौकिक कार्यों के साथ ही धार्मिक तत्त्वों का ऐसा समावेश कर दिया है, कि उनसे हमको अपने जीवन-निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है और समाज भी सुमार्ग पर अग्रसर हो सकता है। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील प्राणी है। दूसरों को कोई शुभ काम करता देखकर, उसके मन में भी वैसा ही काम करने की इच्छा स्वतः उत्पन्न होती है। फिर यदि उस शुभ कर्म के करने वाले उसके कुटुंबीजन अथवा पूर्वज हों तो उस कार्य में उसका अनुराग और भी बढ़ जाता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में जिनके कुलों में उत्तम और सत्कर्म होते चले आये थे, उनकी संतान भी प्रायः सन्मार्गगामी होती थी। इसके विरुद्ध जिनके पूर्व पुरुष बहुत समय से जघन्य आचार वाले अथवा निंदनीय वृत्ति वाले रहे हों, उनकी संतान का सुधार बड़ी कठिनता से होता था, क्योंकि बालक

अधिकांश में अपने बड़ों से ही आचरण सीखते हैं और उसी साँचे में ढलते हैं, जिसमें उनके पूर्व पुरुष ढले होते हैं।

जो बात एक व्यक्ति के संबंध में कही गई है, वही समाज के संबंध में भी सत्य है, क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियों के समूह का ही नाम है। जिस समाज या जिस जाति में अधिक संख्या जैसे भले या बुरे, उन्नतिशील अथवा अवनतिशील लोगों की होगी, वैसी ही वह जाति बन जाएगी। इसीलिए सभ्य जातियाँ अपने महान् कार्य करने वाले पूर्व पुरुषों, महात्माओं, प्रतापवान् व्यक्तियों की स्मृति को सुरक्षित बनाए रखने के लिए प्राण-पण से यत्न करती हैं, जिससे आगामी पीढ़ियों को उनका श्रेष्ठ आदर्श प्रेरणा देता रहे। इस स्मृति को स्थिर रखने और ताजा बनाये रखने के दो उपाय हैं—

एक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना और उनका पठन-पाठन, जिससे बालकों और युवकों के हृदयों में अपने प्रातःस्मरणीय पुरुषों के कीर्ति-कलाप और उच्च आदर्श स्थान बना लेते हैं। दूसरी विधि-उन खास तिथियों को, जब उन महापुरुषों के जीवन की कोई महान् घटना घटी हो अथवा जिस दिन उनका जन्म हुआ हो, उत्सव अथवा त्यौहार मनाना है। इससे साधारण मनुष्यों को भी उन महापुरुषों के नाम लेने और उनके संबंध में कुछ चर्चा करने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे वे सत् शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, अपने जीवन को किसी उच्च लक्ष्य की तरफ मोड़ सकते हैं। संसार की सभी सभ्य जातियों में इस प्रकार के स्मारक-दिवस बड़े उत्साह और समारोह के साथ मनाये जाते हैं और किसी जाति की सभ्यता और उच्चता का अनुमान पूर्व पुरुषों के प्रति उसके सम्मान और वीर-पूजा से लगाया जाता है।

जिस जाति के पास ऐसे कोई महापुरुष नहीं हैं, वह बड़ी अभागी है और उन्नति के मार्ग पर उसका अग्रसर होना अत्यंत कठिन है, क्योंकि जब उसके सामने कोई उच्च आदर्श ही नहीं, तो किस प्रकार अवनति के गड्ढे से निकलकर उन्नति के शिखर

की तरफ अग्रसर हो सकती है ? इसलिए समाजशास्त्र-वेत्ताओं ने यहाँ तक कह दिया है कि जिस जाति के पास दुर्भाग्य से उच्च आदर्श के लायक कोई महापुरुष न हो, उसे किसी अन्य जाति के महापुरुषों को अपना लेना चाहिए, क्योंकि बिना आदर्श के उत्कर्ष की संभावना बिना जड़-मूल के पौधे के फलने-फूलने की आशा के समान हास्यास्पद है। कहा जाता है कि योरोप में फ्रांस देश इस विषय में अग्रगण्य है और पूर्व पुरुषों के जितने स्मारक तथा स्मृति-दिवस वहाँ पाये जाते हैं, उतने और किसी देश में नहीं पाये जाते। जापान वाले तो अपना मुख्य धर्म ही पूर्वजों की पूजा करना मानते हैं और वहाँ जो ११ मुख्य त्यौहार प्रचलित हैं, उनमें से नौ पूर्व पुरुषों के स्मारक-दिवस ही हैं।

सौभाग्य से हमारा भारतवर्ष भी इस विषय में किसी अन्य जाति से पीछे नहीं है। एक प्रकार से तो हम कह सकते हैं कि हिंदुओं के बराबर त्यौहार और पर्व-दिवस संसार की किसी भी जाति में प्रचलित नहीं हैं। यदि यहाँ के सब त्यौहारों, पर्वों तथा व्रतोत्सव आदि की गणना की जाए तो उनकी संख्या इतनी अधिक है कि १ वर्ष के ३६५ दिन में से एक भी दिन ऐसा नहीं मिल सकता, जो किसी न किसी दृष्टि से पवित्र पर्व और विशेष धार्मिक कृत्य से शून्य हो। इसी से यहाँ एक कहावत प्रचलित हो गई है कि—"आठ वार और नौ त्यौहार।"

× × ×

पर जिस प्रकार वर्तमान काल में हिंदू जाति में एक प्रकार की निर्जीवता आ गई है, वह ऋषि-मुनियों द्वारा निर्धारित जीवन-प्रदायक प्रथाओं को भूलकर, सारहीन रूढ़ियों के जाल में ग्रसित हो गई है, उसी प्रकार हमारे त्यौहारों और पर्वों का रूप भी विकृत हो गया है। अब लोग उनके मूल स्वरूप को तो बहुत कुछ भूल गये हैं और उनके स्थान में उद्देश्यहीन बेढंगी रूढ़ियों को अपनाकर पुरानी लकीर पीटते जा रहे हैं। इतना ही नहीं, कितने ही त्यौहारों पर लाभदायक कृत्यों के बजाय लोग ऐसे काम करने

लग गए हैं, जो स्पष्टतः हानिप्रद हैं। उदाहरण के लिए कुछ लोगों ने दिवाली को जुआ खेलने का ही त्यौहार बना डाला है और वे इस अवसर पर एक दिन नहीं, कई दिनों तक भयंकर रूप से जुआ खेलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक बार बड़ी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। इसी प्रकार होली पर जबर्दस्ती रंग और कीचड़ आदि फेंकने तथा गंदी से गंदी गाली बकने को ही त्यौहार का उद्‌देश्य समझ लिया जाता है। इसके कारण भी मार-पीट हो जाना और सिर फूटना साधारण बात हो गई है। गत कुछ वर्षों में तो इसके कारण कई स्थानों पर अनेक हत्याएँ भी हो चुकी हैं।

यों तो समाज में आज ऐसे भी महापुरुष मौजूद हैं, जो पंडित और ज्ञानी होने का दावा करते हुए, इन सब कुरीतियों का समर्थन करते हैं, पर हम त्यौहारों के नाम पर या प्राचीन रूढ़ियों के बहाने ऐसी बात का समर्थन नहीं कर सकते, जिनसे व्यक्तियों और समाज को हानि उठानी पड़े। अधिकांश मनुष्यों की प्रकृति प्रायः अधोगामिनी होती है और उसे जरा भी सहारा या बहाना मिल जाए तो फौरन दुर्व्यसनों की तरफ प्रेरित होती है। यही कारण है कि मनुष्यों को सदैव सन्मार्ग, पुण्य कार्यों का ही उपदेश दिया जाता है। हानिकारक कार्यों, दुर्व्यसनों अथवा गंदे आमोद-प्रमोद के लिए किसी को उपदेश देने की जरूरत नहीं होती, इनके सिखाने वाले (गुरु लोग !) तो हर जगह बिना पैसे-कौड़ी के स्वयं ही मिल जाते हैं। इसलिए कोई त्यौहार किसी भी उद्‌देश्य की सिद्धि के लिए क्यों न स्थापित किया गया हो, अगर उसमें कुछ हानिकारक बातों का समावेश हो गया हो तो उनका त्याग अवश्य करना चाहिए। ये बातें व्यक्तिगत रूप से तो किसी प्रकार सहन करनी भी पड़ती हैं, पर इनको सामाजिक रूप दे देना तो महा पाप समझना चाहिए, क्योंकि फिर तो उसका प्रभाव भले-बुरे सभी श्रेणियों के लोगों पर पड़ता है।

त्यौहार और धार्मिक उत्सव जाति के लिए नव-जीवन प्रदान करने वाले और स्फूर्ति प्रदायक होते हैं, इसलिए उनका प्रचार

बढ़ाना और उनको उत्साह से मनाना तो सभी समाज-हितैषियों का परम कर्तव्य है, पर साथ ही यह ध्यान रखना भी परमावश्यक है कि हम उनके वास्तविक उद्देश्य और रूप को न भूलें। समय के प्रभाव से व्यक्ति और वस्तुओं की तरह संस्थाएँ और प्रथाएँ भी जीर्ण पड़ जाती हैं और उनमें अनेक प्रकार की कमजोरियाँ, दूषण प्रवेश कर जाते हैं। समझदार समाज-नेताओं का कर्तव्य है कि इस तरफ ध्यान देते रहें और जिस प्रकार हम प्रति वर्ष अपने गृहों, वस्तुओं की सफाई, मरम्मत आदि कराते रहते हैं, उसी प्रकार सामाजिक प्रथाओं का भी समयानुकूल संशोधन और परिवर्तन करते रहें। प्रत्येक सामाजिक प्रथा, त्यौहार या उत्सव आदि को अटल-अचल समझ लेना मूर्खों का लक्षण है। हमें इस संबंध में सबसे पहले यह सूत्र याद कर लेना चाहिए कि "तमाम प्रथाएँ मनुष्यों के लिए बनाई गई हैं, न कि मनुष्य इन प्रथाओं के लिए।" जो व्यक्ति ऐसा समझते हैं या ऐसा कहते हैं कि ये तमाम त्यौहार और उनकी पद्धतियाँ सदा से ऐसी ही चली आई हैं और सदा ऐसी ही रहनी चाहिए, वे विचारशील कदापि नहीं हो सकते, बुरा न माना जाए तो उनको 'कूप-मंडूक' भी कहा जा सकता है। त्यौहार और सामाजिक उत्सव सदैव कुछ न कुछ बदलते रहते हैं और उनके करने की विधियाँ तो आज भी हर प्रदेश में कुछ न कुछ भिन्न हैं। हजार-दो हजार वर्ष की बात तो छोड़ दीजिए, अब से पाँच-सात सौ वर्ष पहले के साहित्य और ऐतिहासिक ग्रंथों की भी भली प्रकार खोज कीजिए तो आपको मालूम पड़ेगा कि उस समय मनाए जाने वाले अनेकों त्यौहार आज समाप्त हो गए हैं और कितने ही नये प्रचलित हो गये हैं। इतनी दूर भी जाने की जरूरत नहीं, हम अपनी आयु के भीतर ही विचार करके देखें और पता लगाएँ तो कितने ही त्यौहार और उत्सव जो हमारी बाल्यावस्था में जोर से मनाये जाते थे, आज बिल्कुल खत्म हो गये हैं या कम पड़ गए हैं। पर खेद है कि जो लोग विचारशीलता से कोई नाता ही नहीं रखते, 'खोज करना' किस चिड़िया का नाम

है, यह जानते ही नहीं और जिनकी निगाह अपनी गली से बाहर भी नहीं जाती, वे किसी भी प्रथा के लिए लाखों और करोड़ों वर्ष से कम की बात ही नहीं करते। ऐसे ही लोग समाज को पीछे की तरफ धकेलने वाले होते हैं।

त्यौहारों और सार्वजनिक उत्सवों की विवेचना में हमारा लक्ष्य यही है कि अपने पूर्व पुरुषों के अनुकरणीय और उज्ज्वल सत्कार्यों की स्मृति को कायम रखते हुए, हम उनको इस प्रकार मनाएँ, जिससे वे हमारे लिए ही नहीं, मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हों। हमें सदैव उनसे कोई सत्‌शिक्षा, सत्प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। हमें उनको ऐसे समयानुकूल ढंग से मनाना चाहिए, जिससे वे हमारी किसी आवश्यकता की पूर्ति करें और त्रुटियों को दूर करें।

एक आवश्यक बात यह भी है कि त्यौहारों की संख्या बहुत बड़ी होना कोई प्रशंसा की बात नहीं है। 'आठ वार और नौ त्यौहार' वाली स्थिति का नतीजा यह होता है कि त्यौहारों का महत्त्व और विशेषता अनेक अंशों में खत्म हो जाती है और लोग उनको भारस्वरूप समझने लगते हैं। जैसा हम आरंभ में लिख चुके हैं, त्यौहारों का एक बहुत बड़ा उद्‌देश्य यह है कि मनुष्य बहुत समय तक एक-सा काम करते हुए और एक रस जीवन व्यतीत करते हुए जब ऊब जाता है, तो उसकी तबियत को बदलने के लिए, थकावट को दूर करके विश्राम पाने के लिए उसके सामने कोई नवीन कार्यक्रम, कोई नवीन आकर्षण उपस्थित किया जाये। यह उद्‌देश्य तभी सिद्ध हो सकता है, जबकि त्यौहारों का अवसर उचित समय और फासले से आए। अगर हम हर रोज ही त्यौहार और व्रतोत्सव मनाते रहें तो उनकी विशेषता कैसे टिक सकती है ? फिर तो वे लोगों को समय और धन खर्च कराने वाले एक बोझ की तरह जान पड़ते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि हम चाहे दस या बीस कितने भी त्यौहार मनायें, पर उनको पूरे उत्साह और व्यवस्था के साथ मनाएँ, तभी

उनके मनाने का उद्देश्य पूरा हो सकता है और हमारी दृष्टि में उनकी श्रद्धा और प्रतिष्ठा कायम रह सकती है।

हमने इस पुस्तक में मुख्य रूप से अपना लक्ष्य यही रखा है कि पाठक प्रत्येक त्यौहार के वास्तविक रूप को समझकर उसे ऐसे तरीके से मनाएँ, जो समाज के लिए हितकारी सिद्ध हो। उनको यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार हिंदू-शास्त्रों में बतलाये षोडश या द्वादश संस्कार मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण करके उसकी उन्नति में सहायक होते हैं, उसी प्रकार ये त्यौहार और पर्वोत्सव आदि सामाजिक विकास और उसके संगठन को सुदृढ़ करने वाले संस्कार हैं। इनका उद्देश्य सदैव समाज का हित होना चाहिए और जो कोई बात इसके विपरीत जान पड़े, उसका धर्म के वास्तविक तत्त्वों को दृष्टिगोचर रखते हुए संशोधन करना चाहिए।

त्यौहारों के मनाने की विधियाँ हमने बहुत कम स्थलों पर दी हैं, क्योंकि प्रत्येक त्यौहार के अवसर पर यह यज्ञ (हवन), अध्ययन (शास्त्रों का पठन-पाठन) और दान (सत्पुरुषों और लाभकारी संस्थाओं की सहायता) तो हमारा कर्तव्य ही है। इनके सिवाय जो लौकिक या आमोद-प्रमोद की विधियाँ हैं, वे सभी स्थानों में कुछ न कुछ भिन्न हुआ करती हैं। इसलिए उनको अपने स्थान की प्रथा के अनुसार सुरुचिपूर्ण ढंग से मनाने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। हाँ, जैसा हम ऊपर बतला चुके हैं, उन सबमें सामाजिक हित के मूल सिद्धांत का ध्यान अवश्य रखा जाये, उसके विपरीत कोई कार्य न किया जाये और जहाँ ऐसी कोई बात दिखलाई पड़े उसका समझदारी और प्रेमपूर्वक संशोधन कर दिया जाये।

❐ ❐

नवीन संवतसर

हमारे वर्ष का प्रारंभ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से होता है। इसलिए इसको संवतसर प्रतिपदा कहते हैं। 'ब्रह्मपुराण' में लिखा है कि ब्रह्मा ने आज के दिन ही सृष्टि की रचना प्रारंभ की थी।

चैत्र मासि जगत ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्ल पक्षे समग्रंतु तदा सूर्योदये सति।।

अर्थात् "चैत्र शुक्ल-पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्मा ने जगत् की रचना की।" इसी दिन भगवान् के मत्स्यावतार का आविर्भाव हुआ था। सतयुग का प्रारंभ इसी दिन हुआ था और भारतवर्ष के सार्वभौम सम्राट् विक्रमादित्य के संवत् का प्रथम दिन भी यही है।

नवीन संवतसर का उत्सव प्रत्येक देश में मनाया जाता है। ईसाइयों में पहली जनवरी को 'न्यू इयर्स डे' का त्यौहार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। फारस देश के निवासी पारसियों के यहाँ सूर्य के मेष राशि में प्रवेश करने के दिन 'जश्न-नौरोज' बड़ी धूमधाम से होता है। अन्य जातियों में भी इसी से मिलती-जुलती प्रथाएँ हैं, इसीलिए स्वराज्य प्राप्ति के बाद भारतवर्ष में इस प्रकार का सार्वजनिक उत्सव अवश्य मनाया जाना चाहिए। भारतवर्ष में केवल हिंदू ही नहीं रहते, वरन् मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, बौद्ध और भी अनेक मजहबों के व्यक्ति बहुत बड़ी संख्या में बसते हैं। हिंदुओं के अन्य त्यौहारों में तो उनके विशेष धार्मिक विधान संपन्न किए जाते हैं, किसी न किसी देवता का पूजन होता है, तीर्थस्नान, दान, वेदपाठ आदि का भी नियम पालन करना होता है। पर नवीन संवत्सर के उत्सव में कोई नियम अनिवार्य नहीं है। इसको प्रत्येक धर्म के व्यक्ति, जो अपने को भारतीय समझते हैं, अपनी-अपनी रुचि के अनुसार मना सकते हैं। हिंदू अपने मंदिरों में भगवान् की पूजा और वेदपाठ करके,

मुसलमान अपनी मसजिदों में नमाज पढ़कर और कुरान का पाठ करके, ईसाई अपने गिरजे में ईश प्रार्थना और बाइबिल संबंधी प्रवचन सुनकर इसको मना सकते हैं। इसके संबंध में यह ऐतराज करना कि हिंदू शास्त्रों में इसका निर्देश है, ठीक नहीं। जब हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सब कोई अंग्रेजी अमलदारी में बिना किसी ऐतराज के १ जनवरी को 'नव वर्ष' की छुट्टी मना लेते थे और बहुत से नई रोशनी के व्यक्ति उसमें प्रत्यक्ष रूप से भाग भी लेते थे, तो कोई कारण नहीं जो हम चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को 'नये साल' का उत्सव मनाने में ऐतराज करें।

खेद का विषय है कि अनेक वर्षों से भारतवासियों में राष्ट्रीयता और एकता की भावना का अधिकांश में लोप हो गया है और उसका स्थान संकीर्णता ने ले लिया है। एक देश में अनेक धार्मिक विश्वासों का होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, विशेषतः भारतवासी तो इस विषय में आरंभ से ही सबसे अधिक उदार और अग्रसर रहे हैं। जहाँ ईसाई और मुसलमान देशों में धार्मिक विश्वासों में शंका और तर्क करने वालों को प्राण-दंड दिया गया है, भारतवर्ष के धार्मिक क्षेत्र में घोर आस्तिक से घोर नास्तिक तक, अव्वल दर्जे के छुआछूत वाले से लेकर सरभंगी तक, पेड़ और साँपों की पूजा करने वालों से लेकर निराकार सर्वव्यापी ब्रह्म की उपासना करने वाले तक सभी लोगों को सदा से स्थान मिला है। ईसाई मत को अब तक योरोप में स्वीकार नहीं किया और जिस समय ईसाइयों पर अत्याचार जारी थे, उसी समय दक्षिण भारत के कोचीन, मलाबार आदि प्रदेशों में उसका स्वागत किया गया, जहाँ आज भी १७०० वर्ष से अधिक प्राचीन गिर्जाघर मौजूद हैं। इसी प्रकार मुसलमान आक्रमणकारियों के आगमन से बहुत पूर्व यहाँ इस्लाम मजहब वालों को भी स्थान दिया गया था। सारांश यह है कि हिंदू जाति धार्मिक विश्वासों के संबंध में सदा से उदार रही है और उसका यह सिद्धांत रहा है कि मानव प्रकृति के विकास को देखते हुए भिन्न-भिन्न दर्जे के

मनुष्यों के लिए पृथक्-पृथक् पूजा और उपासना की विधि होना असंगत नहीं वरन स्वाभाविक है। गाँव का एक साधारण किसान भगवान् की मूर्ति पर दो-चार फूल चढ़ाकर और स्तुति करके ही शांति पा सकता है, जबकि एक योगी या संन्यासी को निर्विकल्प समाधि ही मुक्ति का मार्ग जान पड़ती है। इसी प्रकार वह सभी मजहबों को भी भिन्न-भिन्न रुचियों के मनुष्यों के लिए उचित मानता है।

ऐसी दशा में हमको कोई कारण नहीं जान पड़ता कि इस देश के निवासी धार्मिक मत मतांतरों के आधार पर आपस में अनैक्य रखें। हमारा कर्तव्य है कि कुछ समय से अज्ञानवश लोगों में जो संकीर्णता का भाव उत्पन्न हो गया है, उसे मिटाने के लिए सार्वजनिक त्यौहारों और उत्सवों की योजना करें। जैसे २६ जनवरी और १५ अगस्त के उत्सव राष्ट्र भर के लिए माननीय समझे जाते हैं और सब कोई उनमें बिना भेद-भाव के भाग लेते हैं, उसी प्रकार नव वर्षारंभ का उत्सव हमको ऐसे रूप में मनाना चाहिए, जिससे वह किसी एक जाति या संप्रदाय का न रहकर सार्वजनिक जान पड़े। वैसे हिंदू मात्र उस दिन को नवरात्रि का प्रथम दिन होने के कारण मनाते ही हैं और उस दिन उपवास रखकर हवन आदि कृत्य करते हैं, पर अभी तक वे 'नव वर्ष' का त्यौहार बहुत कम मनाते हैं और अनेक तो इसका कोई महत्त्व भी अनुभव नहीं करते। इसलिए अब यदि भारतीय नव वर्ष के उत्सव का प्रचार एक सार्वजनिक त्यौहार के रूप में किया जाए तो उससे विविध संप्रदायों और मत मतांतरों के समन्वय में उल्लेखनीय सहायता मिल सकती है।

पद्धति—नव वर्ष के दिन प्रातःकाल ही घर की सफाई करके उसे लीपकर, चौक आदि मंगल चिह्नों से सुशोभित करके, नये स्वदेशी वस्त्र पहन कर, सपरिवार हवन करे। साथ ही हाथ में गंध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर संकल्प करके नई बनी चौरस चौकी पर स्वच्छ सफेद वस्त्र बिछाकर उस पर हल्दी या

केसर से रंगे हुए चावलों का अष्टदलकमल बनाए। उस पर भगवान् की मूर्ति स्थापित करके "ॐ ब्रह्मणे नमः" मंत्र का उच्चारण करके पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उसकी पूजा करे। पूजा के अंत में ब्रह्मा से प्रार्थना करे "हे भगवान् ! आपके प्रसाद से मेरे सब वर्ष भर के विघ्न नष्ट हो जाएँ और यह आगामी वर्ष मेरे लिए कल्याणकारी तथा शुभ हो। दोपहर के समय श्रद्धानुसार योग्य और निर्धन व्यक्तियों को भोजन कराएँ। इसे राष्ट्रीय पर्व समझकर बड़ी धूमधाम से मनाएँ और इस प्रकार आदर्श भारतीय नरेश विक्रमादित्य की कीर्ति को स्थायी और समुज्ज्वल बनाने में सहयोग दें। यह प्रतिपदा सब पापों को नष्ट करने वाली, आयु को बढ़ाने वाली और सौभाग्यदायिनी है।

राष्ट्र और समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए देश में बसने वाले विभिन्न समुदायों और संप्रदायों का समन्वय और पारस्परिक सद्भावना अनिवार्य है। जहाँ के निवासी आपस में वैमनस्य अथवा उदासीनता का भाव रखने वाले होंगे, वह समाज कभी सुदृढ़ और शक्तिशाली न होगा। नवीन संवत्सर का त्यौहार देश के सभी वर्गों और संप्रदायों को एक संगठन के सूत्र में आबद्ध करने वाला है, अतएव इसका समारोह पूर्वक मनाना प्रत्येक भारतवासी का पवित्र कर्तव्य है।

❐ ❐

नवरात्रि

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से चैत्र शुक्ल नवमी तक का समय नवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है। वर्ष में दो 'नवरात्रि' होती हैं। एक आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ होकर नवमी तक रहती है और दूसरी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से आरंभ होकर नवमी तक। पहली को शारदीय नवरात्रि कहते हैं और दूसरी को बासंती नवरात्रि। देवी के भक्त इस अवसर पर 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ करते हैं। कुछ लोग रामायण और महाभारत आदि का भी पाठ करते हैं।

जिस प्रकार प्रतिदिन संध्या होती है और उस समय को परमात्मा के ध्यान और जप आदि के लिए अन्य समयों से अधिक प्रशस्त माना गया है, उसी प्रकार ये दोनों 'नवरात्रि' ऋतु-संध्याएँ हैं और उनका उपयोग मुख्य रूप से आध्यात्मिक उपासना और साधना में करना अधिक प्रशस्त और फलप्रद है। जो लोग आध्यात्मिक कल्याण की कामना से जप-तप के अभिलाषी हैं, उनको इस समय का उपयोग इसी निमित्त करना चाहिए।

इस अवसर पर जप-तप पर विशेष जोर देने का एक और भी कारण है। जिस प्रकार इस समय फसल पूरी तरह से तैयार होकर कार्य में आने लायक स्थिति में आ जाती है, उसी प्रकार यह अवसर जप-तप की सफलता के लिए भी बहुत उपयुक्त होता है अथवा जिस प्रकार ऋतुकाल का समय स्त्रियों में गर्भाधान के उपयुक्त समझा गया है, उसी प्रकार वर्ष के इन दिनों में किया गया जप-तप निश्चित रूप से फलदायक होता है। इसलिए बुद्धिमान साधक अन्य सब समयों की अपेक्षा 'नवरात्रि' के अवसर को आध्यात्मिक साधना में ही लगाते हैं।

अखिल जगत् की माता भगवती दुर्गा की आराधना भारत में सदा से होती आई है। यश, राज्य, पुत्र, आयु और धन-संपत्ति की

वृद्धि के लिए देवी के पूजन का विशेष माहात्म्य है। इसीलिए भगवान् व्यास ने कहा है—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जंतोः।
स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभां ददासि।।
दारिद्रय दुःख भय हारिणी कात्वदन्या।
सर्वोपकार करणाय सदार्दचित्ता।।

अर्थात् "हे माता तू स्मरण मात्र से सब भयों का निराकरण कर देती है और जो तुझे स्वस्थ मन से भजते हैं, उनके दरिद्रता, भय आदि सब कष्टों को तू हर लेती है।"

नवरात्रि के संबंध में पुराणों में एक उपाख्यान है कि महिषासुर नाम का दैत्य महा अभिमानी था। अपनी सत्ता जमाने के लिए उसने सूर्य, अग्नि, इंद्र, वायु, यम, वरुण आदि सब देवताओं को अधिकार-च्युत कर दिया। तब सब देवता ब्रह्मा जी के पास गये, जहाँ भगवान् विष्णु और शिवजी भी विराजमान् थे। महिषासुर के अत्याचारों को सुनकर विष्णु और शिव को बड़ा क्रोध आया और उस क्रोध ने एक महातेज का रूप धारण कर लिया। सब देवताओं का तेज भी उसमें मिल गया और उससे एक महाशक्ति उत्पन्न हुई, जिसके तीन नेत्र और आठ भुजाएँ थीं। यही भगवती दुर्गा थीं। सब देवताओं ने अपने-अपने आयुध उसे दिये। इस प्रकार के संगठन से शक्तिशाली बनकर देवी ने महिषासुर को ललकारा। इस महा संग्राम में प्रलयकाल का सा दृश्य दिखलाई पड़ने लगा, महिषासुर के साथी भी एक साथ दुर्गा पर झपटे, पर उसने अपूर्व शक्ति द्वारा सबका एक साथ संहार कर डाला। अंत में महिषासुर भी मारा गया और देवताओं तथा मुनियों ने देवी का जय-जयकार किया। देवी ने प्रसन्न होकर कहा कि, आप जैसे शांतिप्रिय और सत्त्वगुण संपन्न महात्माओं और देवताओं के कल्याण का मैं सदैव ध्यान रखूँगी और उनकी सहायता के लिए सदैव तैयार रहूँगी।

नवरात्रि का यह पर्व सामाजिक हित की दृष्टि से भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। चैत्र और क्वार के महीनों में ऋतु-परिवर्तन के कारण प्रायः अनेक नये-नये रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कितने ही रोग ऐसे छूत वाले होते हैं कि जिनका उपाय औषधियों द्वारा भी भली प्रकार नहीं हो पाता। पर देवी के पूजन और यात्रा, सामूहिक यज्ञ और हवन के द्वारा समस्त ग्राम अथवा नगर का वातावरण शुद्ध होकर सब लोग इस समय के परिवर्तन के कुप्रभाव से बच जाते हैं। हवन आदि से जो लाभ होता है, उसे सभी विचारशील लोगों ने स्वीकार किया है। दूषित वायु को शुद्ध करने के लिए हवन से बढ़कर कोई उपाय नहीं है। फिर जब वह हवन उत्तम मुहूर्त में वेद मंत्रों के शुभ भावों को हृदयंगम करते हुए किया जाता है, तो उसका प्रभाव और भी चमत्कारी सिद्ध होता है। इसलिए इस अवसर पर कल्याणमयी माता दुर्गा का आशीर्वाद ग्रहण करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।

वर्तमान काल में भौतिक उन्नति का महत्त्व लोगों की दृष्टि में बहुत बढ़ गया है और आध्यात्मिकता को केवल कल्पना की अथवा अवकाश के समय चर्चा कर लेने की चीज़ समझ लिया गया है। पर हमारे शास्त्रकारों ने हजारों वर्ष पूर्व यह घोषित कर दिया था कि बिना आध्यात्मिक उन्नति के भौतिक उत्कर्ष बालू की दीवार के समान क्षणस्थायी है। इसलिए यदि हम अपने समाज और देश की संस्कृति को अटल-अचल बनाए रखना चाहते हैं, तो हमको भौतिक क्षेत्र के साथ-साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में भी प्रगति करते रहना चाहिए। नवरात्रि का त्यौहार इसी आध्यात्मिकता के अभ्यास को स्थायी बनाने वाला है। इसमें हमको अपना समय विशेष रूप से विशेष साधना में ही लगाना चाहिए, जिससे आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि हो।

❑ ❑

राम नवमी

भारतीय इतिहास में सबसे देदीप्यमान आदर्श चरित्र भगवान् राम का ही है। यह बहुत वर्षों से हिंदू जाति का पथ-प्रदर्शक रहा है और इसी से यहाँ के निवासी अपने कर्तव्य-पालन की शिक्षा पाते रहे हैं। सच पूछा जाये तो पिछली अनेक शताब्दियों से विदेशियों की सभ्यता तथा संस्कृति के आक्रमण से हिंदू संस्कृति की रक्षा का श्रेय भगवान् राम की पुण्य गाथा को ही है, जिसके मुकाबले का आदर्श चरित्र संसार की और कोई जाति उपस्थित नहीं कर सकी है।

भगवान् राम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने आजीवन अपने हानि-लाभ, सुख-दुःख की परवाह न करके एकमात्र कर्तव्य पालन को ही अपना लक्ष्य रखा और उसके लिए कैसा भी कठिन से कठिन प्रसंग सम्मुख क्यों न आ जाये, वे पश्चात्पद न हुए। इतना ही नहीं, वे बड़ी से बड़ी हानि के अवसर पर भी कर्तव्य की रक्षा के लिए सहर्ष प्रस्तुत हो जाते थे और तनिक भी विचलित न होते थे। उनकी इसी विशेषता के कारण महाकवि वाल्मीकि जी ने लिखा है—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकार विभ्रमः।।

अर्थात् "राज्याभिषेक के लिए बुलाये गये और वन के लिए विदा किये गये रामचंद्र के मुख के आकार में मैंने कुछ भी अंतर नहीं देखा।"

इसी मनोभावना का परिणाम था कि किशोरावस्था में ही, जब महर्षि विश्वामित्र उनसे धर्म-विरोधियों का उच्छेद करने के लिए सहायता माँगने आये, तो भगवान् राम ने कार्य की गुरुता का तनिक भी ख्याल किये बिना उनके संग जाना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार जब कैकेयी के षड्यंत्र के फलस्वरूप उनको

राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास का आदेश दिया गया, तब भी उनके मुख पर तनिक भी मलीनता नहीं आई और उन्होंने सहर्ष कहा—

पिता दीन मोहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।

और वास्तव में उनका सबसे बड़ा कर्तव्य दक्षिण भारत के वनों में ही था, जहाँ रावण के पक्ष के मुखिया आर्यों की नई बस्तियों को नष्ट करके राक्षस-साम्राज्य स्थापित करने का उद्योग कर रहे थे। यद्यपि उन बस्तियों के आर्य-नेता अगस्त आदि ऋषि उनका मुकाबला कर रहे थे, पर राक्षस-जाति की महान् शक्ति के मुकाबले में उनको सफलता नहीं मिल रही थी। ऐसे समय में किसी ऐसे सुयोग्य और वीर नेता की आवश्यकता थी, जो युद्ध-कला में निष्णात होने के साथ ही पूर्ण नीति कुशल भी हो और समस्त बिखरी हुई शक्तियों का एकीकरण करके राक्षसों के मूलाधार पर कुठाराघात करे। ऐसी सामर्थ्य उस समय भगवान् राम के सिवाय और किसी में दिखलाई नहीं पड़ती थी और इसलिए उन्होंने इस महान् कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए उनको वर्षों तक नंगे पैरों हजारों कोस घोर जंगलों और वनों में घूमना पड़ा और हर तरह के कष्ट सहन करने पड़े। रावण ने उनको इस संगठन-कार्य से विरत करने की बहुत चेष्टा की, यहाँ तक कि अपनी बहिन के साथ विवाह कर देने का प्रलोभन भी दिखलाया, पर भगवान् राम ने 'निशचर हीन करों महि' की जो प्रतिज्ञा की थी, उससे वे एक भी कदम पीछे न हटे। कुछ ही समय में उन्होंने दक्षिण प्रवासी आर्यों का दृढ़ संगठन करके राक्षसों के सबसे प्रबल मुखिया खर-दूषण का विध्वंस कर दिया और दक्षिण भारत के पश्चिमी तट से राक्षस-साम्राज्य के विस्तार की संभावना को समूल उखाड़ फेंका। इससे क्रुद्ध होकर रावण उनकी पत्नी को हर ले गया। पर भगवान् राम इससे भी विचलित न हुए और उन्होंने

राक्षस-साम्राज्य की राजधानी लंका के निकट रहने वाली वनचर जातियों को अपने पक्ष में मिलाकर और संगठित करके लंकापति रावण का संहार कर डाला और दक्षिण भारत में रामेश्वर तक आर्य-साम्राज्य की पताका फहरा दी और इस प्रकार जिस कार्य को किशोरावस्था में उठाया था, उसे अनगिनत विघ्न-बाधाओं को सहन करते हुए पूरा करके दिखला दिया।

भगवान् राम के चरित्र का दूसरा पहलू समाज की मर्यादा अथवा अनुशासन को पालन करना तथा कराना था। वे जानते थे कि कोई समाज, जिसके अनुयायियों में अनुशासन का भाव पूर्ण रूप से न होगा, कभी उन्नति और सफलता के शिखर पर नहीं पहुँच सकता। इसलिए वे सदैव अपने पिता-माता, गुरु और अन्य गुरुजनों की आज्ञा को शिरोधार्य करते रहे और उन्होंने इसमें कभी उचित-अनुचित तक का विचार नहीं किया, उस समय ब्राह्मण ही समाज के संचालक, पथ-प्रदर्शक थे और भगवान् राम आजीवन उनके सामने नतमस्तक रहे और उनके प्रत्येक आदेश का पालन करते रहे। इसी प्रकार अपने छोटे भाइयों और हनुमान्, अंगद आदि अनुचरों को भी उन्होंने आदेश-पालन की शिक्षा दी। जिन लोगों ने मर्यादा को भंग किया, उनके लिए उन्होंने दंड का भी विधान किया और इन उपायों से आर्य-साम्राज्य की जड़ को मजबूत करके उन्होंने देशवासियों को उन्नति के मैदान में अग्रसर कराया।

यह भगवान् राम की मर्यादा-पालन की भावना ही थी, जिससे उन्होंने राजगद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद ही प्रजा के मनोभावों को जानकर सीताजी का परित्याग कर दिया। वे सदैव अपनी प्रजा के पालन के लिए, उसके कल्याण के लिए, उसके सुख-सौभाग्य की वृद्धि के लिए तत्पर रहते थे। उन्होंने वन जाते समय लक्ष्मणजी से स्पष्ट कहा था—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवश नरक अधिकारी।।

राजा का शासन-सूत्र ग्रहण करने के बाद वे इसी नीति पर चले और प्रजा के हित का ध्यान रखते हुए उन्होंने उसको इतना सुखी बना दिया कि 'राम-राज्य' का शब्द आज तक सुशासन का पर्यायवाची समझा जाता है। उनके शासन का जो चित्र गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में खींचा है, उसमें यदि एक बड़ा हिस्सा भी कवि-कल्पना का मान लें तो भी 'राम-राज्य' का मुकाबला करने वाला शासन संसार में कहीं भी मिल सकना संभव नहीं है। 'राम-राज्य' का सारांश इन्हीं दो चौपाइयों में आ जाता है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम-राज्य नही काहुहिं व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

इस प्रकार भगवान् राम का चरित्र हमको अपने कर्तव्य-पालन और मर्यादानुसार व्यवहार की शिक्षा देता है और राम-नवमी के अवसर पर उनके इन्हीं गुणों का चिंतन करना और उन्हें अपने जीवन में यथाशक्ति उतारना हमारा कर्तव्य है।

❑ ❑

गंगा दशहरा और गायत्री-जयंती

हिंदू-समाज में गंगा का महत्त्व कितना अधिक माना गया है, इस पर ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक हिंदू गंगा को पूज्य दृष्टि से देखता है, उसके जल को सिर पर चढ़ाता है और उसे हर तरह के पाप का नाशक मानता है।

ऐसी पुण्य सलिला, त्रिविध पापनाशिनी गंगाजी जेष्ठ शुक्ल दशमी, बुधवार के दिन हस्त नक्षत्र में इस धरा धाम पर अवतीर्ण हुई थीं। इसीलिए इस पर्व को गंगा दशहरा कहते हैं। शास्त्रों का मत है कि इस दिन गंगा-स्नान करने से दस प्रकार के महापातक छूट जाते हैं।

गंगा के अवतरण की कथा-लोक प्रसिद्ध है। किस प्रकार राजा भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए गंगाजी को पृथ्वी पर लाने का व्रत ग्रहण किया और अनेक वर्षों तक घोर तपस्या करके अंत में अपने उद्देश्य की पूर्ति की, इसकी कथा धार्मिक हिंदुओं के लिए ही नहीं, वरन् सभी मनुष्यों के लिए शिक्षाप्रद और अनुकरणीय है। भगीरथजी की यह जीवन-साधना हम सबको बतलाती है कि यदि मनुष्य दृढ़ निश्चय कर ले और उद्योग में लगा रहे तो कठिन से कठिन कार्य को भी पूरा करके दिखला सकता है। हिमालय की शृंखलाओं और घाटियों में फँसे हुए गंगा-जल को समतल भूमि तक लाकर मनुष्यों के जीवन-निर्वाह के कार्यों में प्रयुक्त करना केवल पूर्वजों को तारने वाला कार्य ही नहीं था, वरन् एक बहुत बड़ी लोक-सेवा भी थी। आज भी भारत के अधिकांश प्रसिद्ध नगर, संस्कृति-केंद्र स्थान गंगाजी के किनारे पर ही हैं और इसी के अमृतोपम जल को पीकर ऋषि-मुनियों ने यहाँ के साहित्य, दर्शन और आध्यात्मिक तत्त्वों का निर्माण किया है, जो आज भी हमको उद्धार का मार्ग दिखला रहे हैं। इस दृष्टि से राजा भगीरथ भारतीय संस्कृति के एक बड़े संरक्षक अथवा स्तंभ सिद्ध होते हैं। जिस कार्य को उनके पितामह तथा पिता

अधूरा छोड़ गये थे उसको उन्होंने अपने अपूर्व अध्यवसाय से सफल करके दिखला दिया और देश तथा जाति के लिए एक ऐसा साधन उपस्थित कर दिया, जिसकी तुलना और किसी कार्य से कर सकना कठिन है। इस महान् उपकार के लिए भगीरथजी समस्त हिंदू-जाति के श्रद्धा और भक्ति के पात्र हैं और सदैव रहेंगे। जेष्ठ शुक्ल दशमी को हम जो उत्सव मनाते हैं, वह वास्तव में भगीरथजी की ही जयंती है, जिससे हम लोक-सेवा, परोपकार, जनता का हित-साधन, स्वार्थ-त्याग आदि की अनुपम शिक्षाएँ ग्रहण कर सकते हैं।

● गायत्री-जयंती

जेष्ठ शुक्ल दशमी ही गायत्री-जयंती का दिन है। गंगा के समान गायत्री भी हिंदू धर्म का मुख्य स्तंभ है और वेद से लेकर पुराणों तक समस्त धर्म-शास्त्रों का सार है। इसके जप के प्रभाव से ही प्राचीन ऋषिगण मुक्ति-मार्ग का निरूपण कर सके हैं और आज भी अनगिनत व्यक्ति इसकी साधना से अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति कर रहे हैं। गायत्री धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चारों फलों को देने वाली और भवसागर की समस्त बाधाओं से परित्राण करने वाली है।

गायत्री केवल हमारे व्यक्तिगत लाभ की ही साधन नहीं है, वरन् इसके द्वारा हमारे समाज की प्रगति में भी अकथनीय सहायता प्राप्त होती है। गायत्री मंत्र के 'नः' शब्द में इस बात का संकेत है कि गायत्री माता को एकाकीपन नहीं वरन् सामूहिकता पसंद है। कितने ही लोग जो अकेले रहकर अपने हित-साधन में ही व्यस्त रहते हैं, उनको आरंभ में तो कुछ लाभ प्राप्त हो सकता है, पर जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए यह अकेलेपन की भावना बड़ी घातक है। यह स्वार्थपरता का ही एक रूप है। पिछले ३-४ हजार वर्षों से भारतवर्ष में धीरे-धीरे इसकी वृद्धि हो रही है और इसी ने देश में फूट उत्पन्न करके राष्ट्र का

सत्यानाश किया है। सदैव उन्नति वे ही लोग करते हैं, जो दूसरों को साथ लेकर चलते हैं, एक-दूसरे को बढ़ाते हैं और मिल-जुल कर खाते हैं। इसके विपरीत जहाँ लोग अपना ही कल्याण चाहते हैं, अपने भाई की उन्नति को देखकर बुरा मानते हैं, अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए समाज के बड़े से बड़े नुकसान की भी चिंता नहीं करते, वह देश भारतवर्ष की तरह अविद्या, गरीबी, गुलामी, बेबसी, बेकारी आदि के कष्ट ही सहता रहता है। इतिहास से यही सिद्ध होता है कि जब कोई जाति उठी है तो सामूहिकता की प्रवृत्ति को अपनाकर ही उठी है।

गायत्री मंत्र में अनेकों महत्त्वपूर्ण तत्त्व भरे हैं। उनमें से एक अत्यधिक महत्त्व की प्रेरणा सामूहिकता की है। 'नः' शब्द के द्वारा माता बार-बार अपने हर सच्चे पुत्र को, सच्चे उपासक को, एकाकी स्वार्थपरायण न बनकर सामूहिकतावादी, लोक-सेवी बनने की प्रेरणा करती है। इस विषय में अब तक के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गायत्री माता किसी साधक की व्यक्तिगत साधना से जितनी प्रसन्न होती है, उससे कई गुनी प्रसन्न वह उस साधक से होती है, जो परमार्थ-परायणता की भावना से कार्य करता है। जिस पर भी वह प्रसन्न होती है, उसे निश्चित रूप से ऐसी ही प्रेरणा देती है, क्योंकि आत्म-शक्ति सुख, शांति, प्रतिष्ठा, मुक्ति आदि सभी लाभ परमार्थ-परायणता से ही प्राप्त होते हैं। स्वार्थी के लिए लाभ बहुत थोड़ा है, जितना परिश्रम किया उतनी ही मजदूरी मात्र का वह अधिकारी है। अनेकों का हित साधन करने से तो अपने आप ही वह साधना अनेक गुनी फलदायक हो जाती है। सच्चे गायत्री-साधक का यही मार्ग है। उसका कर्तव्य है कि जहाँ तक संभव हो स्वयं सामूहिक हित का ध्यान रखकर वैसे कार्यों में सहयोग दे और अपने निकटवर्ती लोगों को भी वैसी ही प्रेरणा प्रदान करे। यही गायत्री-जयंती मनाने का सच्चा उद्देश्य और सच्ची विधि है।

किसी भी महान् कार्य को सिद्ध करने के लिए सामूहिक शक्ति की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पिछले कई सौ वर्षों से व्यक्तिवाद की भावना ने हमारे यहाँ की सामूहिकता की भावना को दबा दिया था और उसी के फलस्वरूप हमको पराधीनता के बंधन में बँधना पड़ा। गायत्री अपने भक्तों को पूर्ण रूप से सामूहिकता की शिक्षा देती है, जिससे वे अपने सम्मुख स्थित महान् उद्देश्यों की पूर्ति कर सकें। इस पर्व पर इस शिक्षा को हृदयंगम कर लेना हमारा पवित्र कर्तव्य है।

❑ ❑

हरियाली तीज

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है और इसलिए यहाँ वर्षा की ऋतु बड़ी आवश्यक और महत्त्व की समझी जाती है। जिस वर्ष बरसात समय पर और उपयुक्त परिमाणों में हो जाती है, उस वर्ष फसल भी संतोषजनक होती है और सभी श्रेणियों के लोग खाने-पीने की सुविधा का अनुभव करते हैं। पर जब वर्षा में व्यतिक्रम हो जाता है और वह समय पर नहीं होती या कम होती है, तो मनुष्य ही नहीं, पशु तक चारे के लिए तरसते हैं और देश में चारों तरफ तबाही और भुखमरी के दृश्य दिखलाई पड़ने लगते हैं।

शायद बहुत-से लोग इस बात को नहीं जानते कि वर्षा का बहुत कुछ संबंध पेड़ों से है। जहाँ पेड़ अधिक होंगे, वहाँ वर्षा भी पर्याप्त होगी और उसका जल जमीन में ठहरेगा। इसलिए जब भारतवर्ष में जंगल पर्याप्त मात्रा में थे, तब यहाँ वर्षा भी आवश्यकतानुसार हुआ करती थी और दूध, घी आदि पदार्थ भी लोगों को सहज में मिलते रहते थे, पर जब लोगों की जमीन की भूख बढ़ी और उन्होंने जंगलों को काटकर जमीन को नंगा कर दिया, तभी से वर्षा अस्त-व्यस्त हो गई और हम प्रायः असामयिक वर्षा का दृश्य देखने लगे। अब पेड़ों के अभाव से जहाँ खेतों की उपज में अंतर पड़ गया है, वहाँ भूमि का कटाव भी बढ़ गया है और कितने ही प्रदेशों में उपजाऊ जमीन रेगिस्तान के रूप में बदलती जा रही है।

हमारे पूर्वज उपयुक्त तत्त्व को भली प्रकार समझते थे और पेड़ों का लगाना तथा उनकी रक्षा करना उन्होंने बड़े पुण्य का काम बतलाया है। "अग्नि पुराण" में लिखा है—"जो मनुष्य वृक्ष लगाता है, वह अपने तीस हजार पितरों का उद्धार करता है। जो कोई अपने वंश, धन और भावी सुख की वृद्धि चाहता हो, तो उसे फल-फूल वाले किसी वृक्ष को न काटना चाहिए।" "पद्म-पुराण"

में लिखा है कि—"जो मनुष्य सड़क के किनारे वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक सुख भोगता है, जितने वर्षों तक वह वृक्ष हरा रहता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे पूर्वजों ने वृक्षों की वृद्धि और रक्षा के लिए पूरा ध्यान दिया था और लोग इस संबंध में असावधानी न करें इसलिए तत्संबंधी नियमों का समावेश धर्म-ग्रंथों में कर दिया था। इतना ही नहीं वे अनेक वृक्षों को तो पवित्र तथा पूजनीय मानते थे, जैसे पीपल के वृक्ष की रक्षा करना प्रत्येक हिंदू अपना कर्तव्य समझता है और तुलसी के पौधे की पूजा हर एक घर में की जाती है। वास्तव में हिंदू धर्म में पेड़ों को जीवधारी माना गया है और जहाँ तक संभव हो अकारण उनको काटा-पीटा न जाए, इसका पूरा ध्यान रखा गया है। हर्ष का विषय है कि वृक्षों में जीव होने की बात विज्ञान से भी भली प्रकार सिद्ध हो चुकी है, जिसका श्रेय भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बोस को ही है।

श्रावण के शुक्ल पक्ष की तीज मुख्य रूप से वृक्षों का ही त्यौहार है। यह समय ऐसा होता है जब वर्षा भली प्रकार आरंभ हो जाती है और पृथ्वी माता हरित परिधान धारण कर लेती है, जबकि खेत, मैदान, वन, उपवन हर जगह की हरियाली नेत्रों को सुख देने लगती है। नर-नारियों की टोलियाँ बाग-बगीचों में भ्रमण करने लगती हैं और प्रकृति की शोभा को निरखकर मन को प्रफुल्लित करती रहती हैं। तीज के दिन महिलाओं का बाग-बगीचों में झूला झूलना तो प्राचीन प्रथा है। जिस समय हमारे घरों की देवियाँ अपनी सखी-सहेलियों के साथ झूलती हुई कोकिल-कंठ से वर्षा के गीत गाती हैं, उस समय की छटा देखने ही योग्य होती है।

पर इस पर्व पर केवल प्राकृतिक छटा को देख आनंदित होना ही हमारे कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकता। इस दिन हमको अपने देश की उद्‌भिज संपत्ति के संबंध में भी कुछ विचार करना चाहिए और उसकी वृद्धि तथा रक्षा के कार्य में कुछ सहयोग देना

चाहिए। यदि उस दिन प्रति घर के पीछे एक नया पेड़ लगाने का नियम बना लिया जाए तो कुछ ही समय में हमारा पूरे का पूरा देश एक हरा-भरा बगीचा बन सकता है, जिससे समस्त प्राणी अपरिमित लाभ उठा सकते हैं।

इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हरियाली तीज के दिन या तो हम कोई नया पौधा लगा दें या उपयुक्त समय पर लगाने का निश्चय करके उसकी व्यवस्था कर दें। साथ ही यह भी परमावश्यक है कि, जो पौधा हम लगाएँ उसकी देख-भाल, पानी देना आदि का भी काम तत्परता से करें, क्योंकि पौधा लगाने का तात्पर्य उसे पाल-पोसकर वृक्ष बना देने से ही है।

❑ ❑

श्रावणी और रक्षाबंधन

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को दो त्यौहार एक ही साथ मनाए जाते हैं—(१) श्रावणी, (२) रक्षाबंधन।

प्राचीन समय में ऋषि-महर्षि लोग आज के दिन से वेद का पारायण आरंभ करते थे, जिसे "उपाकर्म" कहा जाता था। वैसे तो वेद का पाठ नित्य ही करना द्विज मात्र का कर्तव्य बतलाया गया है, पर वर्षा ऋतु में उसके लिए विशेष रूप से व्यवस्था की जाती थी। आषाढ़ और श्रावण मास में तो यहाँ की जनता विशेष रूप से कृषि कार्यों में व्यस्त रहती थी। श्रावण के अंत में उस कार्य से अवकाश मिलता था और वे धार्मिक चर्चा के लिए अधिक समय दे सकते थे। इसी प्रकार वर्षा की अधिकता से क्षत्रियों का सेना लेकर इधर-उधर जाना तथा वैश्यों का व्यापार भी शिथिल पड़ जाता था। उधर ऋषि-मुनि लोग भी वर्षा के कारण वनों या जंगलों में रहना असुविधाजनक देखकर शहरों के निकट चले आते थे। इस प्रकार सब तरह की सुविधाएँ मिल जाने से वेद-पाठ और वैदिक तत्त्वों की व्याख्या करने के लिए सभाओं का आयोजन किया जाता था। प्राचीन समय में इसके आरंभ करने का दिन श्रावण मास की पूर्णिमा ही रखा गया था, जो अभी तक प्रचलित है और उत्सर्जन (समाप्ति) की तिथि पौष शुक्ल पूर्णिमा थी। पर अब अन्य वर्णों की क्या बात, ब्राह्मणों ने भी वेद का पठन-पाठन अधिकांश में छोड़ दिया है, इसलिए अब प्राचीन काल के उपाकर्म, उत्सर्जन, ऋषि-तर्पण और बड़े हवन आदि का विकृत तथा नाम मात्र का रूप रह गया है और उपाकर्म (उपकर्म) के साथ ही उत्सर्जन (विसर्जन या समापन) कर दिया जाता है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि हम श्रावणी के त्यौहार को पुनः वास्तविक रूप में प्रचलित करें और इसके द्वारा समाज में धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन का प्रचार बढ़ाएँ। प्राचीन काल में सब जातियों के बालकों को गुरुकुल में

रखकर समस्त शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। वर्तमान स्कूल और कॉलेजों की तरह उस शिक्षा की कोई फीस नहीं ली जाती थी, वरन् विद्यार्थियों के व्यय की व्यवस्था भी गुरु की तरफ से ही होती थी। जब ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा समाप्त कर लेते थे और उनके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का अवसर आता था, तो उनको गुरुदक्षिणा के रूप में यही प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि, वे अपने जीवन भर अध्यापन को जारी रखेंगे। जाति में ज्ञान की ज्योति को प्रचलित रखने के लिए उस समय के विचारशील महापुरुषों ने यही मार्ग निश्चित किया था, जिससे प्रत्येक व्यक्ति जीवन-निर्वाह के अन्य कार्यों को करते हुए स्वयं ज्ञान-वृद्धि करता रहे और भावी पीढ़ी के अध्ययन कार्य में भी सहायक बने। यही आदर्श श्रावणी के त्यौहार के दिन हमको अपने सामने रखना चाहिए और समयानुकूल रूप में इसका अन्य लोगों में प्रचार भी करना चाहिए। दुर्भाग्यवश इस समय शिक्षित लोगों का ध्यान भी धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन से हट गया है और वे केवल अर्थकरी (रुपया कमाने वाली) विद्या को ही सब कुछ समझने लगे हैं। श्रावणी के त्यौहार को उचित रूप से मनाकर समाज का ध्यान आध्यात्मिक तत्त्वों की ओर मोड़ना भी आवश्यक है। केवल भौतिक ज्ञान और भौतिक लाभ की ओर लक्ष्य रखने का जो कुछ दुष्परिणाम होता है, वह हमारे नेत्रों के सम्मुख है। इसी दूषित मनोवृत्ति के प्रभाव से आज एक मनुष्य दूसरे को खा जाने के लिए तैयार है और इसमें कोई बुराई नहीं समझता। इसलिए अध्यात्म तत्त्वों का प्रचार करके मनुष्यों में मनुष्यत्व की भावना का जाग्रत् करना परम आवश्यकीय है।

रक्षा-बंधन—श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को ही रक्षा-बंधन का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन उत्तर भारत के प्रायः सभी स्थानों में बहिनें अपने भाइयों के हाथों में राखी बाँधती हैं। पुरोहित अथवा अन्य ब्राह्मण भी राखी बाँधते हैं। इसकी कथा शास्त्रों में इस प्रकार लिखी है—

एक बार युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण भगवान् से पूछा कि—"समस्त रोग और अशुभ घटनाओं से वर्ष भर रक्षा करने वाला कोई उपाय बतलाइये।" श्रीकृष्ण जी ने कहा, "हे युधिष्ठिर ! प्राचीन काल में इंद्राणी ने इंद्र की विजय के लिए जो उपाय किया था, उसे मन लगाकर सुनो। देवताओं और असुरों में एक बार बारह वर्ष तक घोर संग्राम होता रहा, जिसमें असुरों ने संपूर्ण देवताओं सहित इंद्र पर विजय प्राप्त कर ली। इस महान् पराजय से दुःखी होकर इंद्र देवगुरु वृहस्पति जी से कहने लगे कि, इस समय न तो मैं ठहरने में समर्थ हूँ और न कहीं भागने का अवसर है। अतः मुझे लड़ना अनिवार्य हो गया है, चाहे उसका परिणाम कैसा भी बुरा क्यों न हो।" इस बात को सुनकर इंद्राणी बीच में ही बोल उठीं—"प्राणनाथ ! आप निर्भय रहें। मैं एक ऐसा उपाय करती हूँ जिससे अवश्य ही आपकी विजय होगी।" दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्रावणी थी। इंद्राणी ने ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराके इंद्र के हाथों में रक्षा की पोटली बाँध दी। रक्षा-बंधन से सुरक्षित इंद्र ने जब दैत्यों पर चढ़ाई की, तब वह उनको काल के समान भयंकर जान पड़ा और सब दैत्य उसके सामने से भाग गये। इस प्रकार यह रक्षा-बंधन बड़ा प्रभावशाली और सब प्रकार की आपत्तियों से बचाने वाला है।"

भविष्य पुराण के अनुसार रक्षा-बंधन का समय दोपहर के पश्चात् होता है और 'स्मृति कौस्तुभ' के रचयिता ने पूर्णमासी में सूर्योदय होने पर रक्षा-बंधन का समय माना है।

आज यद्यपि रक्षा-बंधन का रूप हाथ में एक लाल-पीला डोरा अथवा रेशम और कलाबत्तू आदि की बनी बढ़िया राखी बाँध देना ही रह गया है, पर भारतीय इतिहास के मध्य काल में इसका महत्त्व बहुत अधिक था और जो स्त्री जिस पुरुष को राखी बाँध देती थी, वह उसकी प्राणपण से रक्षा करता था। इस संबंध में सबसे प्रसिद्ध घटना चित्तौड़ की रानी कर्णवती की है। जब उसके राज्य पर गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चढ़ाई

की, तो रानी ने दिल्ली के मुगल सम्राट् हुमायूँ के पास राखी भेजी और अपनी रक्षा की प्रार्थना की। हुमायूँ उसी समय सेना लेकर रवाना हो गया, पर उसके पहुँचने के पहले ही चित्तौड़ का पतन हो गया था और रानी कर्णवती अपनी सहेलियों के साथ जौहर व्रत करके जल मरी थी। तो भी हुमायूँ ने बहादुरशाह पर आक्रमण करके उसको मार भगाया और रानी के पुत्र को चित्तौड़ की गद्दी पर बैठाकर 'राखी बंद भाई' के नाम को चरितार्थ किया।

आवश्यकता है कि हमारे देशवासी स्त्री और पुरुष राखी के वास्तविक महत्त्व को समझें और समय पड़ने पर असहाय अबलाओं की रक्षा करने का व्रत ग्रहण करें।

इस प्रकार श्रावणी मुख्य रूप से धार्मिक स्वाध्याय के प्रचार का पर्व है। भारतवर्ष का प्राचीन धार्मिक साहित्य संसार में अद्वितीय समझा जाता है और हमारी वर्तमान गिरी हुई अवस्था में भी विदेशियों ने उसकी श्रेष्ठता के सम्मुख मस्तक झुकाया है। पर खेद की बात है कि हम स्वयं अपनी इस अमूल्य ज्ञान-राशि की ओर से उदासीन रहते हैं। वेदों और उपनिषदों की बात तो दूर रही, गीता और रामायण जैसे बहु प्रचारित ग्रंथों का भी ठीक ढंग से समझकर स्वाध्याय करने वाले बहुत थोड़े निकलेंगे। इसलिए जब तक हम स्वाध्याय का नियम न बना लेंगे तब तक इस दिशा में विशेष सफलता मिलनी संभव नहीं। श्रावणी के पर्व पर हमको स्वाध्याय के लिए कोई भी विशेष समय नियत करके उसका आरंभ करना चाहिए। जिन लोगों को पढ़ने-लिखने का विशेष अभ्यास या आदत नहीं है, उनको उस दिन से किसी विद्वान् पुरुष से सामूहिक कथा के रूप में धर्म-ग्रंथों को सुनना चाहिए। बिना इस प्रकार के स्वाध्याय के हमारी आध्यात्मिक भावनाएँ कभी सुदृढ़ नहीं बन सकतीं।

❑ ❑

जन्माष्टमी

हिंदू धर्म का सिद्धांत है कि "जब कभी धर्म की बहुत अधिक हानि हो जाती है और अधर्म का बोलबाला हो जाता है, तो भगवान् अवतार लेकर बिगड़ी हुई परिस्थिति का सुधार करते हैं।" ऐसा ही समय भारतवर्ष में अब से लगभग ५ हजार वर्ष पहले आया था। उस समय सीधे-सीधे गणतंत्र राज्यों के स्थान पर बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना का सूत्रपात हो गया था और शक्तिशाली तथा कुचक्र रचने में निपुण राजा स्थानीय शासनों का नाश करके अपनी साम्राज्य स्थापित करने की लालसा की पूर्ति कर रहे थे। मगध नरेश जरासंध ने बहुत से छोटे-छोटे राजाओं को कैद करके उनके राज्यों पर कब्जा कर लिया। शिशुपाल भी महा अभिमानी और महत्त्वाकांक्षी राजा था। प्राग्जोतिष (आसाम) के राजा नरकासुर ने दुराचार के लिए असंख्यों सुंदरी कन्याओं को पकड़कर अपने महल में बंद कर रखा था। मथुरा के राजा कंस की दुष्टता और राज्य-लोलुपता इतनी बढ़ गई थी कि उसने अपने वृद्ध पिता उग्रसेन को कैद कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। दुर्योधन की घोर स्वार्थपरता के उदाहरण और अन्य राजा-रानियों के चरित्रों से भी यह प्रकट होता है कि उस समय इस देश के बड़े आदमियों में से अधिकांश का चरित्र और धर्म की निगाह से पतन हो गया था और वे विलास और वैभव के आगे नीति और न्याय की परवाह नहीं करते थे।

ऐसे समय में स्वभावतः ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी, कि जिससे धर्म का चारों ओर से ह्रास होने लग गया था और लोगों की रुचि अधर्म की ओर प्रवृत्त होने लगी थी। सज्जन कष्ट पाने लगे थे और अन्यायी, अत्याचारी, दुराचारी गुलछर्रे उड़ा रहे थे। द्रोणाचार्य जैसे विद्वान् और ज्ञानी भी कौरवों के धन से खरीद लिये गये थे, जिससे द्रौपदी पर घोर अत्याचार होता देखकर भी वे बोलने का साहस न कर सके। भीष्म पितामह जैसे परम ज्ञानी

भी वेद के अभ्यासी न थे। ऐसे संकट के समय में किसी महान् विभूति के आगमन की आवश्यकता थी, जो अधर्म का नाश करके पुनः धर्म की स्थापना करे। परमात्मा की इच्छा से ऐसा ही हुआ और अब (सं० २०५८ वि०) से ५२०८ वर्ष पूर्व भाद्रपद बदी अष्टमी, बुधवार, रोहिणी नक्षत्र में भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। उनका जन्म कैसी कठिन परिस्थिति में कंस के कारागार में हुआ, किस प्रकार उनको गुप्त रूप से पालन-पोषण के लिए गोकुल निवासी गोपाधिपति नंद के यहाँ पहुँचा दिया गया और किस प्रकार छोटी अवस्था में ही उन्होंने अपूर्व तेजस्विता और वीरता का परिचय देकर लोगों को चकित कर दिया, यह सब कथा सर्व विदित है।

बाल्यावस्था ही नहीं, भगवान् कृष्ण का समस्त जीवन ही अन्याय का प्रतिकार और न्याय की रक्षा करने में बीता था। उनके चरित्र से हम भी जो सबसे बड़ी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, वह यही है कि हमको किसी भी प्रलोभन या भय के वशीभूत होकर अन्याय के सम्मुख सिर नहीं झुकाना चाहिए, फिर चाहे वह अन्याय किसी एक व्यक्ति का हो या समाज का हो या राज्य का हो। इतना ही नहीं अगर अन्याय करने वाला अपना सगा भाई-बंधु व रिश्तेदार भी क्यों न हो, अगर वह अधर्म के मार्ग पर चलता है, तो उसका विरोध करना हमारा कर्तव्य है। भगवान् कृष्ण ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, कला संबंधी सभी क्षेत्रों में कार्य किया और लोगों को असत् मार्ग से हटाकर सत्मार्ग पर चलाया। इसी प्रकार हमको भी अपने समाज में, राज्य में, व्यक्तियों में जो दोष दिखलाई पड़ें, जो बातें अन्याय या अत्याचार की जान पड़ें, उनका निर्भय होकर विरोध करना चाहिए। यह एक बहुत बड़ी जन-सेवा का कार्य है और इसी के करने से हम भगवान् कृष्ण की जयंती मनाने के अधिकारी सिद्ध हो सकेंगे।

इस समय संसार की जैसी परिस्थिति हो रही है, उसमें भगवान् कृष्ण के उपदेशों को समझना और तदनुसार कार्य करना

और भी आवश्यक हो गया है। दुनिया के अधिकांश देशों में साम्राज्यवाद का बोल-बाला है और वे कमजोरों को दबाकर अपना अनुयायी बनाना चाहते हैं। इसके लिए न्याय-अन्याय का कोई विचार नहीं किया। जिसे दबाना चाहा जाता है, उसके लिए कोई सच्चा-झूठा बहाना निकाल लिया जाता है। ऐसी हालत में प्रत्येक स्वाभिमानी व्यक्ति का कर्तव्य है कि किसी आतातायी के अन्याय और अत्याचार के सम्मुख सिर न झुकाये और जो व्यक्ति दुर्भाग्यवश अन्याय के शिकार बन गये हैं, उनकी सहायता के लिए भी सदा तैयार रहे। यह सच है कि इस प्रकार किसी बड़े शक्तिशाली का विरोध कर सकना हर एक का काम नहीं है, पर अगर हम न्याय-पक्ष के अनुयायी हैं, तो अपनी शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ कार्य कर ही सकते हैं और जब हम सच्चे हृदय से कार्य करेंगे, तो हमको अपने जैसे अन्य सहयोगी भी मिल जाएँगे। अगर हम अपने उद्देश्य में पूर्णरूप से सफल न भी हों, तो सच्ची कर्तव्य बुद्धि से किया गया कार्य निष्फल नहीं जाता और किसी न किसी रूप में अग्रसर होता हुआ समय आने पर अवश्य सफल होता है।

❐ ❐

गणेश चतुर्थी

भाद्रपद मास की शुक्ल-पक्ष की चौथ को गणेशजी का व्रत किया जाता है, क्योंकि उनका जन्म उसी दिन माना गया है। गणेशजी सबसे अधिक लोकप्रिय देवता हैं। प्रत्येक शुभ कार्य में सर्वप्रथम उन्हीं की पूजा-अर्चना की जाती है। साधारण व्यवहारिक निमंत्रण-पत्रों से लेकर बड़े-बड़े ग्रंथों के आदि में 'श्री गणेशाय नमः' लिखने की प्रथा चल गई है। सिद्धि-सदन और विद्यावारिधि गणेशजी आठों सिद्धियों और नव-निधियों के देने वाले हैं। गणेश चतुर्थी को लोग दिन भर व्रत रखते हैं। चार घड़ी रात बीतने पर जब आकाश में चंद्रमा दिखलाई पड़ता है, तो आँगन में पवित्र किये स्थान पर ताँबे या मिट्टी का कलश जल से भरकर उसके ऊपर चाँदी, पीतल या मिट्टी की प्रतिमा स्थापित करके विधिवत् उसकी पूजा करते हैं। इसके बाद गणेशजी का प्रसाद लड्डू आदि ग्रहण करते हैं। जो लोग श्रद्धापूर्वक इस व्रत को करते हैं, उनकी सभी मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं। स्कंदपुराण में लिखा है कि, श्रीकृष्णजी के उपदेश से युधिष्ठिर महाराज ने इस व्रत को किया था, जिससे महाभारत संग्राम में पांडवों की विजय हुई थी। तब से इस व्रत का विशेष प्रचार हुआ। गणेश-चतुर्थी के व्रत की कथा इस प्रकार है—

एक समय शंकरजी और पार्वतीजी विचरण करते-करते नर्मदा के किनारे पहुँच गये। वहाँ एक अत्यंत रमणीय स्थान देखकर विश्राम के लिए बैठ गये। कुछ देर बाद पार्वतीजी बोलीं—"भगवन् ! मेरी इच्छा है कि, यहाँ आपके साथ चौपड़ का खेल खेलूँ।"

शिवजी ने कहा—"अच्छा है, पर हम तुम तो खेलने वाले हुए, परंतु हार-जीत का निर्णय करने वाला भी तो कोई होना आवश्यक है।"

पार्वतीजी ने आस-पास से थोड़ी-सी घास उखाड़कर उससे एक बालक बना दिया और उसमें प्राण डालकर कहा—बेटा, हम दोनों चौपड़ खेलते हैं, तुम उसे देखते रहना और बतलाते रहना कि किसकी हार-जीत हुई।

खेल में तीन बार पार्वतीजी की विजय हुई और शंकरजी तीनों दफे हार गये; परंतु अंत में जब बालक से पूछा गया तो उसने शिवजी की जीत और पार्वतीजी की हार बताई। उसकी इस दुष्टता को देखकर पार्वतीजी बड़ी नाराज हुईं और उसे शाप दिया—"तूने सत्य बात कहने में प्रमाद किया है, इस कारण तू एक पैर से लँगड़ा होगा और सदा इसी बीच में पड़ा रहकर दुःख पावेगा।"

माता का शाप सुनकर बालक ने कहा—"मैंने कुटिलता से ऐसा नहीं किया है, केवल बालकपन के कारण मुझ से भूल हुई है, इससे मुझे क्षमा करो।"

तब पार्वतीजी ने दया करके कहा—जब इस नदी के तट पर नाग-कन्याएँ गणेश-पूजन करने आवें, तो उनके उपदेशानुसार तू भी गणेशजी का व्रत करना। उससे यह शाप दूर हो जायेगा।

यह कहकर पार्वतीजी हिमालय को चली गईं। एक वर्ष बाद नाग-कन्याएँ गणेश-पूजन के लिए नर्मदा के किनारे आईं। उस समय श्रावण का महीना था। नाग-कन्याओं ने वहाँ रहकर गणेश व्रत किया और उस बालक को भी व्रत तथा पूजा की विधि बतलाई। नाग-कन्याओं के चले जाने पर उस बालक ने २१ दिन तक गणेश व्रत किया। तब गणेशजी ने प्रकट होकर कहा—मैं तुम्हारे व्रत से बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए जो इच्छा हो सो वर माँगो।

बालक ने कहा—मेरे पाँव में शक्ति आकर लँगड़ापन दूर हो जाये, जिससे मैं कैलाश पर चला जाऊँ और वहाँ माता-पिता मुझ पर प्रसन्न हो जाएँ।

गणेशजी वरदान देकर अंतर्धान हो गये। बालक शीघ्र ही कैलाश पहुँच कर शिवजी के चरणों पर गिर पड़ा। शिवजी ने पूछा—तूने ऐसा कौन-सा उपाय किया, जिससे पार्वतीजी के शाप से मुक्त होकर यहाँ तक आ पहुँचा। अगर ऐसा कोई व्रत हो तो मुझे भी बता, जिससे उसे करके मैं पार्वतीजी को प्राप्त करूँ, क्योंकि उस दिन से क्रुद्ध होकर वे अभी तक मेरे समीप नहीं आईं।

बालक की बतलाई विधि के अनुसार शिवजी ने भी २१ दिन तक गणेश का व्रत किया, जिससे पार्वतीजी के हृदय में आप ही शिवजी से मिलने की इच्छा हुई और वे पिता हिमाचल से विदा माँगकर कैलाश चली आईं।

× × ×

इस प्रकार गणेशजी का व्रत सब कामनाओं का पूर्ण करने वाला है। गणेशजी हमारे देश के बहुत प्राचीन देवता हैं और ५-६ हजार वर्ष पुराने मोहनजोदड़ो के खंडहरों में भी उनकी पूजा का पता लगता है। गुप्तकालीन मूर्ति कला में भी चूहे पर बैठे गणेशजी की आकृतियाँ बनी हैं।

गणेशजी का दूसरा नाम गणपति भी है। इनके संबंध में जो खोज की गई है, उसके आधार पर अनेक विद्वानों का कथन है कि गणेशजी का नाम अथवा उनकी पूजा का विधान वेदों में नहीं मिलता। फिर भी इतना मालूम होता है कि प्राचीन भारत में स्थान-स्थान पर गणतंत्र शासन के जो संगठन फैले हुए थे, उनके देवता के रूप में गणपति की पूजा की जाती थी और तभी से प्रत्येक शुभ कार्य को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए गणेशजी को मनाने की पद्धति प्रचलित हो गई है। इस प्रकार गणेशजी सामान्य जनता के देवता और मार्ग-दर्शक के रूप में स्वीकार किये जाने योग्य हैं। हमारे वर्तमान राष्ट्रीय आंदोलन के महान् नेता लोकमान्य तिलक ने भी इसी विचार से महाराष्ट्र में गणपति-उत्सव को एक बहुत बड़े राष्ट्रीय त्यौहार का रूप दिया था, जो अभी तक उक्त

प्रांत में कई दिन तक बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। यद्यपि विदेशियों के आगमन से भारत की गणतंत्र प्रणाली एक-डेढ़ हजार वर्ष से समाप्त प्रायः हो गई है, तो भी जनता की उन्नति के लिए उससे उत्तम शासन-प्रणाली अन्य कोई नहीं हो सकती। उसमें प्रत्येक क्षेत्र की जनता अपने निर्वाह के आवश्यक कार्यों की व्यवस्था स्वयं कर सकती है और उसे परावलंबी नहीं होना पड़ता। वह समय भारत में फिर आ जाये और जनता के कष्ट दूर हों, यही प्रार्थना हमको गणेशजी से इस दिन करनी चाहिए।

वर्तमान काल की प्रजा सत्तात्मक शासन-प्रणाली एक प्रकार से प्राचीन गणतंत्र प्रथा का ही रूप है। इतना अंतर अवश्य पड़ गया है कि प्राचीन गणराज्य प्रायः छोटे होते थे और उनके अधिकांश निवासी एक ही जाति, भाषा और धर्म के होते थे। इसके विपरीत आजकल के प्रजातंत्र प्रायः विशाल हैं और उनमें विभिन्न जातियों, धर्मों और भाषाओं के लोग सम्मिलित होते हैं। इसलिए आजकल के प्रजातंत्रों की समस्याएँ पहले से कहीं अधिक जटिल और प्रभावयुक्त हो गई हैं। हमारा देश भी प्रजातंत्र प्रथा का अनुयायी है और उसमें प्राचीन गणतंत्रों के गुणों का समावेश करना हमारा कर्तव्य है। इसलिए गणेश चतुर्थी के त्यौहार पर प्रजातंत्र की सच्ची भावना का प्रचार करना ही वास्तविक गणपति पूजा है।

❐ ❐

सर्व पितृ अमावस्या

पितृ-पक्ष का हिंदू-धर्म और हिंदू संस्कृति में बड़ा महत्त्व है, जो पितरों के नाम पर श्राद्ध और पिंडदान नहीं करता, वह सनातन धर्मी हिंदू माना नहीं जा सकता। हिंदू-शास्त्रों के अनुसार मृत्यु होने पर मनुष्य का जीवात्मा चंद्रलोक की तरफ जाता है और वहाँ से और ऊँचा उठकर पितृ-लोक में पहुँचता है। इन मृतात्माओं को अपने नियत स्थान तक पहुँचने की शक्ति प्रदान करने के लिए पिंडदान और श्राद्ध का विधान किया गया है। श्राद्ध में पितरों के नाम पर ब्राह्मण-भोजन भी कराया जाता है। इसके पुण्य-फल से भी पितरों का संतुष्ट होना माना गया है। धर्म-शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि जो मनुष्य श्राद्ध करता है, वह पितरों के आशीर्वाद से आयु, पुत्र, यश, बल, वैभव, सुख और धन-धान्य को प्राप्त होता है। इसीलिए धर्म-प्राण हिंदू आश्विन मास के कृष्ण पक्ष भर प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करके पितरों का तर्पण करते हैं। जो दिन उनके पिता की मृत्यु का होता है, उस दिन अपनी शक्ति के अनुसार दान करके ब्राह्मण-भोजन कराते हैं।

एक समय इस देश में श्राद्ध-कर्म का इतना प्रचार था कि उसके ध्यान में लोग अपने तन-बदन की सुधि भूल जाते थे। उन्हें बाल बनवाने, तेल लगाने, पान खाने आदि का भी अवकाश न मिलता था। उसी बात के चिह्न स्वरूप आज भी अनेक हिंदू, चाहे वे श्राद्ध करने वाले न भी हों, इन कार्यों से पृथक् रहना धर्मानुकूल मानते हैं। वैसे जिन लोगों के पिता स्वर्गवासी हो गये हैं, वे अमावस्या तक और जिनकी माता स्वर्गवासी हो गई हैं, वे मातृ-नवमी तक न तो बाल बनवाते हैं और न तेल लगाते हैं।

पितरों का पिंडदान करने का सबसे बड़ा स्थान गया माना जाता है और जनता में ऐसी मान्यता है कि गया में पितरों को पिंडदान कर देने पर फिर प्रति वर्ष पिंड देने की आवश्यकता

नहीं रहती। यह भी कहते हैं कि महाराज रामचंद्रजी ने गया आकर फल्गू नदी के किनारे अपने मृत पिता महाराज दशरथ का पिंडदान किया था। कुछ भी हो इस प्रथा से इतना प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि हिंदुओं की सभ्यता प्राचीन काल में काफी ऊँचे दर्जे तक पहुँच चुकी थी और वे जीवित माता-पिता की सेवा करना ही अपना परम धर्म नहीं मानते थे, वरन् उनके मरने पर भी उनका सेवा-सत्कार करना अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे और इसके लिए १५ दिन का समय अलग कर दिया था। हिंदुओं की इस प्रथा की प्रशंसा अन्य लोगों ने भी की है। हिंदुस्तान के मुगल सम्राट शाहजहाँ ने जब उसे उसके लड़के औरंगजेब ने आगरा के किले में कैद कर रखा था, एक पत्र में औरंगजेब को लिखा था कि —"तुम से तो हिंदू लोग ही बहुत अच्छे हैं, जो मरने के बाद भी अपने पिता को जल और भोजन देते हैं। तू तो अपने जीवित पिता को भी दाना-पानी के बिना तरसा रहा है।"

इस विषय पर विशेष प्रचार करने से यही प्रतीत होता है कि पितृपक्ष का महत्त्व इस बात में नहीं है कि हम श्राद्ध-कर्म को कितनी धूम-धाम से मनाते हैं और कितने अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं, वरन् उसका वास्तविक महत्त्व यह है कि हम अपने पिता, पितामह आदि गुरुजनों की जीवितावस्था में ही कितनी सेवा-सुश्रूषा, आज्ञा-पालन करते हैं। चाहे अन्य लोग हमारी बात को ठीक न समझें, पर हम तो यही कहेंगे कि जो व्यक्ति अपने जीवित पिता-माता आदि की सेवा नहीं करते, उलटा उनको दुःख पहुँचाते हैं, या उनका अपमान करते हैं, बाद में उनका पिंडदान और श्राद्ध करना कोरा ढोंग है और उसका कोई परिणाम नहीं; क्योंकि अगर हमारे श्राद्ध का फल पितरों तक सूक्ष्म रूप से पहुँचता भी है, तो वह तभी संभव है, जब हम सच्ची भावना और एकाग्र चित्त से उस कार्य को करें। पर जो लोग जन्म भर अपने पिता-माता को हर तरह से कष्ट पहुँचाते रहे,

उनको भला-बुरा कहते रहे, वे फिर किस प्रकार श्रद्धा और हार्दिक भावना से श्राद्ध आदि कर्म कर सकते हैं ?

इसलिए अगर हम सचमुच अपनी इन प्राचीन प्रथाओं में विश्वास रखते हैं, तो हमको उनसे सर्वप्रथम अपने गुरुजनों के सम्मान और सेवा करने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और उनके सुयश को सदा अपने कार्यों से भी सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना चाहिए। इतना ही नहीं, अगर हम अपने पिता-मातादिक का यथोचित सम्मान नहीं करेंगे, तो अपनी संतानों से किस प्रकार उत्तम व्यवहार की आशा कर सकते हैं ? इसलिये लोक और परलोक दोनों की दृष्टि से हमारा परम धर्म है कि हम गुरुजनों के प्रति अपने कर्तव्य का सच्चे हृदय से पालन करें।

❑ ❑

विजयादशमी

विजयादशमी का त्यौहार, जिसे दशहरा भी कहते हैं, आश्विन शुक्ल दशमी को मनाया जाता है। भारतवर्ष में बरसात का मौसम अन्य देशों से भिन्न प्रकार का होता है और उसके कारण यहाँ तीन-चार महीने तक आवागमन में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। वर्तमान काल में तो रेल, मोटर आदि के कारण इस कठिनाई का लोगों को उतना अधिक अनुभव नहीं होता, पर प्राचीन काल में जब पक्की सड़कें भी देश में कम थीं और आवागमन के साधनों में बैलगाड़ी या घोड़ा आदि ही मुख्य थे। नदी, नालों में बाढ़ आ जाने से कहीं आना-जाना, व्यापार और राज्य संबंधी यात्राएँ लगभग रुक जाती थीं। आश्विन मास में जब वर्षा बंद हो जाती थी और जगह-जगह भरा हुआ पानी सूख जाता था, तो लोग रुके हुए कामों की फिर से व्यवस्था करने में लग जाते थे। विशेष रूप से शासक अपने राज्य में सैनिक-व्यवस्था और शासन-व्यवस्था का निरीक्षण करके, वर्षा ऋतु में आई शिथिलता को दूर करने का प्रयत्न करते थे, क्योंकि यही अवसर होता है कि कोई प्रबल शत्रु या विरोधी अकस्मात् आक्रमण करके अपना आधिपत्य स्थापित कर ले। अतः वर्षा की अधिकता के समाप्त होते ही अपने घर को सँभालने की आवश्यकता पड़ती थी और विजयादशमी को सब प्रकार की सैन्य सामग्री और फौजों को पूर्ण रूप से सुसज्जित कर लिया जाता था।

यद्यपि आजकल आवागमन और सैनिक-व्यवस्था के सिद्धांत बहुत बदल गए हैं और कई वर्षों से तो हवाई जहाज और अणु अस्त्रों ने संसार की काया-पलट ही कर दी है, फिर राष्ट्र-रक्षा, सामूहिक सुरक्षा की समस्याओं में विशेष अंतर नहीं पड़ा है। अब भी देश में शांति और सुरक्षा का कायम रहना और नागरिकों का निःशंक होकर अपने जीवन-निर्वाह तथा सामाजिक हित के कार्यों

में लगा रहना तभी संभव है, जबकि देश के समस्त निवासी परस्पर संगठन और एकता की भावना को उत्पन्न करें और सार्वजनिक क्षेत्र में जो समस्याएँ अथवा कठिनाइयाँ समय-समय पर उत्पन्न हुआ करती हैं, उनका सम्मिलित रूप से निराकरण करने को प्रस्तुत रहें।

प्राचीन परिपाटी के अनुसार विजयादशमी के अवसर पर रामलीला होने और रावण का एक विशालकाय पुतला बनाकर जलाने की प्रथा इस समय सर्वत्र प्रचलित हो गई है। इससे लोगों की यह भी धारणा हो गई है कि विजयादशमी के दिन ही श्रीरामचंद्र जी ने रावण को मारकर विजय प्राप्त की थी और उसी की स्मृति में यह त्यौहार मनाया जाता है, पर यह धारणा न तो वाल्मीकि रामायण से और न तुलसीदास जी की रामायण से सिद्ध होती है। तुलसीदास जी की रामायण से ही विदित होता है कि वर्षा ऋतु के चार मास रामचंद्र जी ने पंपापुर में ही बिताए थे और शरद ऋतु आरंभ हो जाने पर हनुमान जी को सीता जी का पता लगाने भेजा था। इस प्रकार विजयादशमी का दिन रावण-वध का किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। कई अन्य लेखकों ने इस विषय पर खोज करके रावण-वध की तिथि वैशाख कृष्ण चतुर्दशी बतलाई है। कुछ लोग इसे फाल्गुन शुक्ल एकादशी भी बताते हैं। 'भविष्योत्तर पुराण' में विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बनाकर उसके हृदय को बाण से बेधने का विधान है। संभव है कि कालांतर में यह पुतला रावण का ही समझकर उसका संबंध रामलीला से जोड़ दिया गया हो।

कुछ भी हो विजयादशमी का त्यौहार प्राचीन और नवीन दोनों दृष्टिकोण से जन-समुदाय में राष्ट्रीय सुरक्षा की भावना का प्रसार करने के लिए बड़ा उपयुक्त है। प्राचीन काल में तो देश-रक्षा का कार्य केवल क्षत्रियों के सुपुर्द कर दिया गया था और अन्य वर्ण उससे अधिकांश में उदासीन रहते थे, पर अब सामाजिक परिस्थितियों और युद्ध-कला में अत्यधिक परिवर्तन हो

जाने से सभी देशवासियों का कर्तव्य हो गया है कि उसमें भाग लें अथवा अपने को उसके लायक बनाएँ। अब केवल तलवार-ढाल बाँधकर रणभूमि में जाने वाला अथवा बंदूक लेकर फौज के साथ कूच करने वाला ही देश-रक्षा के लिए उत्तरदायी नहीं समझा जाता, वरन् युद्ध-सामग्री तैयार करने वाले, युद्ध के समय सेना और नागरिकों के लिए भोजन-वस्त्र की व्यवस्था ठीक बनाये रखने वाले, सेनाओं और युद्ध-सामग्री को लड़ाई के मौकों पर पहुँचाने वाले व्यक्ति भी रक्षा-व्यवस्था के अंग समझे जाते हैं और यदि उनका कार्य संतोषजनक न हो, तो राष्ट्र का पतन हो सकता है। इसलिए चाहे युद्ध की परिस्थिति हो या न हो और चाहे मनुष्य किसी भी पेशे में क्यों न लगा हो, पर राष्ट्र-रक्षा की भावना का एक-एक बच्चे में होना परमावश्यक है। विजयादशमी त्यौहार पर खेल, तमाशे, टूर्नामेंट, नाटक आदि विविध उपायों से उसे जनमानस में उत्पन्न करना हमारा कर्तव्य है।

× × ×

इस त्यौहार के संबंध में पुराणों में कहा है—आश्विन शुक्ल दशमी नक्षत्रों के उदय होने पर जो 'विजय' नामक काल होता है, वह सब कामनाओं को सिद्ध करने वाला होता है। आज के दिन शमी के वृक्ष की पूजा करने का विधान है। जब दुर्योधन ने पांडवों को बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष तक अज्ञातवास दिया था, तो अज्ञातवास के समय अर्जुन अपना धनुष-बाण शमी के वृक्ष में छिपाकर विराट् राजा के यहाँ नौकरी करने लगा था। एक दिन विराट् राजा का पुत्र उत्तरकुमार गायों की रक्षा के लिए कौरवों से लड़ने गया। उस समय अर्जुन भी उसके साथ था। शत्रुओं की प्रबल सेना देखकर उत्तरकुमार ने तो रणभूमि से भागने का उपक्रम किया, पर अर्जुन ने उसे रोककर अपने धनुष-बाण शमी के पेड़ में से निकाले और शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। देवराज इंद्र ने भी इसी दिन प्रयाण करके दानवराज वृत्रासुर पर विजय प्राप्त की थी। इस प्रकार विजयादशमी प्राचीन काल से अधर्म पर

धर्म की, पशुता पर मानवता की, राक्षसत्व पर देवत्व की विजय का दिन है और इसको सच्चे स्वरूप में मनाना हमारा कर्तव्य है।

वास्तव में विजयादशमी जनता में राष्ट्रीय भावना के प्रसार का त्यौहार है और वर्तमान समय में इसका महत्त्व अतीत काल की अपेक्षा कहीं अधिक है। पहले जमाने में तो राज्य की रक्षा का भार केवल राजा और क्षत्रिय जाति वालों पर ही रहता था, पर अब न तो राजा हैं और न पहले समय का क्षत्रिय जैसा कोई विशेष वर्ण ही है, जो एकमात्र युद्ध का ही पेशा करता हो। अब तो देश-रक्षा के लिए सेना में प्रत्येक जाति और वर्ण के व्यक्ति को शामिल किया जाता है और राष्ट्र पर आक्रमण होने की अवस्था में सभी व्यक्तियों को उसके प्रतिकार में किसी न किसी रूप में भाग लेना ही पड़ता है। इसलिए इस समय विजयादशमी का उद्देश्य यही होना चाहिए कि देश के निवासियों में राष्ट्र-रक्षा की भावना भली प्रकार जड़ जमा ले और राष्ट्र-हित के विरोधी कार्यों से सदैव दूर रहें।

❑ ❑

दीपावली

कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या को दीपावली का त्यौहार मनाया जाता है। इसे मुख्य रूप से वैश्यों का त्यौहार माना गया है। प्राचीन काल में यह मुख्य रूप से सावनी फसल के तैयार होने की खुशी में मनाया जाता था और इसका नाम 'शारदीय नव सस्येष्टि' था। इस संबंध में 'मनुस्मृति' में लिखा है—

'सस्यान्ते नवसस्येष्टया तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरै।

(अध्याय ४, श्लोक २६)

'नव सस्येष्टि' का अर्थ है 'नये शस्य (अन्न या फसल) के लिए यज्ञ'। इसके अतिरिक्त वर्षाकाल में जल की अधिकता से घरों में और नगरों के वातावरण में जो विकृति आ जाती है और उसके फल से मनुष्यों के स्वास्थ्य पर जो प्रभाव पड़ता है, उसके लिए विशेष रूप से स्वच्छता की व्यवस्था करना भी इस त्यौहार का उद्देश्य है। इसके लिए दीपावली से कई दिन पहले घरों की सफाई, लीपा-पोती, सफेदी, मरम्मत आदि होने लगती है और अमावस्या के दिन तक सब लोग अपने घरों और कार्यस्थलों को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक साफ-सुथरे और हर तरह की गंदगी से रहित बना देते हैं। दीपावली के पहले की चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी कहने का भी यही तात्पर्य है, कि उस दिन तक हम अपने आस-पास की सब गंदगी को दूर करके लक्ष्मी के स्वागत के लिए तैयार हो जाएँ।

एक दृष्टि से दीपावली का त्यौहार विजयादशमी के त्यौहार से संबंधित माना जा सकता है। विजयादशमी को क्षत्रियों का मुख्य त्यौहार और दीपावली को वैश्यों का मुख्य त्यौहार बतलाया गया है। इससे हम यह तात्पर्य निकाल सकते हैं कि जिस प्रकार विजयादशमी राज्य-व्यवस्था और राष्ट्र-रक्षा की व्यवस्था का निरीक्षण करने तथा जो त्रुटियाँ उनमें आ गई हैं, उनको दूर

करने का अवसर है, उसी प्रकार दीपावली राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था का दिग्दर्शन करने और उसकी प्रगति के लिए नवीन योजना बनाने का समय है। इसी भावना ने जन-साधारण में इस विश्वास का रूप ग्रहण किया है कि दीपावली को धन की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी भ्रमण करने को निकलती है और जिस भवन या निवास-स्थान को सबसे सुंदर और आकर्षक ढंग से सजा देखती है, उसी में वर्ष भर के लिए अपना आवास बना लेती है। मानस-शास्त्र की निगाह से यह विश्वास निराधार नहीं है, क्योंकि शोभा और समृद्धि तथा गंदगी और दरिद्रता में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। शोभा सौंदर्ययुक्त स्थान की ओर ही सुख-समृद्धि भी आकर्षित होती हैं, मलीन और गंदे स्थानों में तो दरिद्रता का निवास स्वाभाविक ही है। पुराणों में लक्ष्मी का आसन दिव्य-निर्मल कमल बताया गया है। इसका भी आशय यही है कि लक्ष्मी सुंदर और सुसज्जित स्थान में निवास करती है।

इसलिए दीपावली का सच्चा संदेश यही है कि यदि हम अपने राष्ट्र को अपने समाज की समृद्धशाली संपत्ति का स्वामी बनाना चाहते हैं, तो हम सबको, मिलकर दैन्य और दरिद्रता के कारणों का मूलोच्छेदन करना चाहिए। जब देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो जायेगी, हमारे व्यापार और उद्योग-धंधों का विकास होगा, अन्य स्थानों से संपत्ति का प्रवाह हमारे देश की तरफ होगा, तभी हम सब सुख और वैभव का जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यह सत्य है कि हमारे शास्त्रों ने आध्यात्मिक दृष्टि से त्याग और कष्ट-सहन का महत्त्व बतलाया है, पर वह मार्ग थोड़े से ही व्यक्ति अपना सकते हैं। यह कल्पना करना कि देश के सभी लोग त्यागी और तपस्वी बनकर लँगोटी बाँध लेंगे, निरर्थक है। फिर त्याग और तपस्या का यह भी अर्थ नहीं कि हम संपत्ति या सुखदायक पदार्थों को हाथ भी न लगाएँ, वरन् उसका मुख्य आशय यही है कि हम अपने मन की स्थिति को अभ्यास द्वारा ऐसा बना लें अथवा बालकों को आरंभ से ही ऐसी शिक्षा दी जाये,

जिससे वे संपत्ति और वैभव के झूठे मोह में न फँसे और सच पूछा जाये, तो ऐसी ही मनोवृत्ति के व्यक्ति राष्ट्र को सुख-संपत्ति के शिखर पर चढ़ाने वाले होते हैं। इस संबंध में उस अंग्रेज डॉक्टर का उदाहरण अनुकरणीय है, जिसने मुगल सम्राट् शाहजहाँ की पुत्री जहानआरा को भयंकर रूप से जल जाने पर इलाज करके अच्छा किया था। जब बादशाह ने उससे पुरस्कार माँगने को कहा, तो उसने अपने लिए धन-संपत्ति न माँगकर यही माँगा कि, मेरे देश से यहाँ आने वाले माल पर चुंगी न ली जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य देशीय व्यापारियों के मुकाबले में अंग्रेजों को बहुत बड़ी सुविधा मिल गई और वे दूसरों की प्रतिद्वंद्विता में सफल हो गये। पर हमारे यहाँ शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति निकलेगा, जो ऐसे अवसर पर अपने लिए कुछ न माँगकर देश या समाज के हित की माँग करे। हमारे यहाँ यह तो संभव है कि ऐसे अनेक लोग मिल जाएँ, जो ऐसा अवसर आने पर कुछ भी लेने से इनकार करें और अपने कार्य का फल परोपकार या पुण्य ही समझें। यह बहुत बड़ा अंतर हमारे यहाँ के लोगों और योरोपियन, अमेरिकन आदि देशों के मनुष्यों में है। अभी तक यहाँ के निवासी सामूहिक हित में व्यक्तिगत हित का अनुभव करने में असमर्थ हैं और इसीलिए इस देश को पतन और गुलामी का अभिशाप सहन करना पड़ा था।

× × ×

इसलिए दीपावली के त्यौहार के वास्तविक महत्त्व को समझना और उसके द्वारा देश को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करना हमारा परम कर्तव्य है। वैसे तो सभी कार्यों की सफलता के लिए योजना और व्यवस्था की आवश्यकता है, पर आर्थिक विषयों में तो इसके बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। इस अवसर पर जिस प्रकार हम अपने बहीखातों को ठीक करके आगामी वर्ष के व्यापार के संबंध में विचार करते हैं, उसी प्रकार हमको इस अवसर पर राष्ट्र की आर्थिक अवस्था पर, अपने निजी

पारिवारिक बजट पर भी विचार करना चाहिए। दीपावली के समय फसल का अवसर होने और जाड़े की ऋतु में व्यापार की अधिकता होने से, यदि हम दीपावली के अवसर पर अपने देश और समाज के तथा अपने निजी सभी आर्थिक विषयों पर विचार कर लें, तो वह निस्संदेह बड़ी लाभजनक प्रणाली सिद्ध होगी।

दीपावली का त्यौहार वास्तव में राष्ट्र के आर्थिक उत्थान का सामूहिक प्रयत्न है। वैसे तो सभी व्यापारी और उद्योग-धंधों के संचालक सदा अपने हानि-लाभ का विचार करके अपने लिए लाभकारी व्यवस्था करते रहते हैं, पर दीपावली के अवसर पर हम राष्ट्र के आर्थिक हितों के ऊपर विचार कर सकते हैं। प्राचीन-काल में ऐसा होता भी था और कदाचित् उसी के प्रतीक स्वरूप आज भी प्रत्येक थोक व्यापारी दीपावली के दिन सब वस्तुओं का भाव लिखकर अपने परिचित अन्य व्यापारियों को भेजता है। हमको चाहिए कि हम दीपावली को सच्चे अर्थों में राष्ट्र के आर्थिक हितों पर विचार करने और उसका विकास करने का साधन बना दें।

❑ ❑

भैयादूज अथवा यमद्वितिया

दीपावली के बाद कार्तिक शुक्ल द्वितीया को भैयादूज या यमद्वितिया का त्यौहार होता है। यह भाई और बहिन के स्नेह को प्रकट करने वाला त्यौहार है। अनेक परिवारों में आर्थिक कारणों से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे लोग बहिनों और लड़कियों को देखकर प्रसन्न नहीं होते। ऐसे मनोभावों को मिटाने और भाई-बहिन के बीच सद्भाव कायम रखने के लिए यह भैयादूज का त्यौहार बड़ा उपयोगी है।

कथा—इस त्यौहार की कथा इस प्रकार कही जाती है कि श्री यमुनाजी अपने भाई यमराज से प्रायः प्रार्थना किया करती थीं कि, वे उसके घर आकर भोजन करें, पर यमराज को काम की अधिकता से कभी यमुनाजी के घर आने का अवसर ही नहीं मिलता था। एक दिन यमुनाजी ने हठ करके, यमराज को भोजन का निमंत्रण दे ही दिया। यम कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को यमुनाजी के घर गये। बहिन ने बड़ी श्रद्धा से यम को भोजन कराया। यम ने भी वस्त्राभूषण, अलंकार आदि बहिन को दिये। इसके बाद यम ने कहा कि तुम्हारी जो और इच्छा हो सो माँग लो। यमुनाजी ने कहा कि आप प्रति वर्ष आज के दिन भोजन करने मेरे घर पधारा करें और इस दिन के उपलक्ष्य में जो व्यक्ति स्नान करके बहिन के घर भोजन करे और सामर्थ्यानुसार बहिन को भेंट दे उसे यमलोक के कष्ट सहन न करने पड़ें। यमराज ने उसे ऐसा ही वर दिया और यह भी कहा कि इस अवसर पर यमुनाजी में बहिन के साथ स्नान करने का फल बहुत अधिक होगा और जो व्यक्ति ऐसा करेंगे, वे मेरे यहाँ आकर कभी दुःख न उठाएँगे।

× × ×

इस प्रकार भैयादूज मुख्यतया नारियों का त्यौहार है, जो उनको लोकोपकार, जन-सेवा के कार्यों के लिए प्रेरित करता है। इस देश के अनेक भागों में पर्दा-प्रथा का प्रचार है और जहाँ पर्दा-प्रथा का प्रचार नहीं भी है, वहाँ भी स्त्रियों का बाहर निकलकर

सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना अच्छा नहीं समझा जाता। यद्यपि वर्तमान अवस्था में तो कोई इस रीति का समर्थन नहीं करेगा, पर यहाँ की सभ्यता में प्राचीन समय से ही यह माना गया है कि स्त्री का कार्य-स्थल मुख्यतया अपनी गृहस्थी का संचालन करना है। गृहस्थी का कार्य ऐसा बहुमुखी है कि यदि उसके सब कार्यों—माता, गृहिणी, पत्नी आदि के कर्तव्य का विधिवत् पालन किया जाए, तो बाहरी कार्यों के लिए समय मिल सकना बड़ा कठिन है। अतएव ऐसी नारियों के लिए अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए यह स्वाभाविक है कि वे अपने परिवार के व्यक्तियों को सार्वजनिक क्षेत्र में, समाज-सेवा के कार्य में अग्रसर करें।

इस प्रकार यदि इस दिन स्त्रियाँ, त्यौहार की लौकिक रस्मों को पूरा करने के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन के प्रति अपने कर्तव्य पर विचार करें और उसके लिए अपने को संगठित और प्रस्तुत करें, तो यह एक बड़े महत्त्व का कार्य होगा। यदि पहले जमाने में वे इस ओर कम ध्यान देती थीं तो कोई बात नहीं, त्यौहारों में समयानुकूल सुधार और परिवर्तन अवश्य होना चाहिए, क्योंकि संसार की परिस्थितियाँ कभी एक-सी नहीं रहतीं और अगर हम बदली हुई परिस्थितियों का ध्यान न रखेंगे, तो कभी सुख-शांति न पा सकेंगे। इसलिए भैयादूज को नारी-जागरण का प्रधान त्यौहार समझकर उनके द्वारा समाज की सेवा और उन्नति, समाज में उनको यथोचित सम्मान की प्राप्ति आदि बातों की तरफ अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए। नारी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और माता की हैसियत से वह जाति की सच्ची निर्माणकर्त्री है। यदि वह अवनतिपूर्ण अवस्था में पड़ी रही तो समाज के उत्थान की आशा करना ही व्यर्थ है। अतः भैयादूज के अवसर पर महिलाओं को राष्ट्र के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से 'तिलक कराई' की यही भेंट माँगनी चाहिए, कि वे नारियों के अधिकारों का समुचित ध्यान रखें और उनको उन्नति के मार्ग पर बढ़ने में हर तरह से सहायता दें।

❑ ❑

गोपाष्टमी

गोपाष्टमी बड़ा प्राचीन त्यौहार है। कहा जाता है कि कार्तिक शुक्ल द्वितीया को गोवर्द्धन की पूजा कराके और इंद्र के अहंकार को चूर करके भगवान् कृष्ण ने गौओं का जुलूस निकाला था तथा उनकी पूजा की थी, तभी से यह त्यौहार प्रचलित है। हिंदुओं के प्रत्येक शास्त्रों में गौ की महिमा गाई गई है और उसे सर्व मनोरथों की सिद्धि करने वाली कामधेनु बतलाया गया है। वेद तक में कहा गया है कि 'गोस्तु मात्रा न विद्यते' अर्थात् 'गाय के समान अन्य कोई नहीं है।' इसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए, जनता में इसकी जड़ भली-भाँति जमा देने के लिए, भगवान् ने स्वयं गोपाल का रूप धारण किया और इस प्रकार बतलाया कि तुम सब भी गायों का पालन करो, उनकी पूजा करो, उनके द्वारा अपना कल्याण करो। इसके कारण भगवान् 'माखन चोर' तक कहलाये। उन्होंने स्वयं उदाहरण देकर बतलाया कि गोरस ही जीवन है और तुम्हें उसका समुचित प्रयोग करके शक्तिशाली बनना चाहिए। अगर कोई अन्याय या अत्याचार से तुमको उससे वंचित रखता है, तो तुम जबरदस्ती से, चोरी करके, छीन करके भी मक्खन खाओ। इससे स्वस्थ और सबल बनकर तुम अन्यायियों, अधर्मियों का मुकाबला कर सकोगे और धर्म की रक्षा करने में समर्थ होओगे।

हमारे मत से गोपाष्टमी केवल गौ की पूजा अथवा उसकी उन्नति के उपाय करने का ही त्यौहार नहीं है, वरन् यह देश के पशु-धन की वृद्धि और उसकी नस्ल की तरक्की करने का आयोजन है। जिस प्रकार आजकल पशु-प्रदर्शिनी, मवेशी-मेले आदि की व्यवस्था की जाती है, उसी उद्देश्य से प्राचीन काल में गोपाष्टमी के त्यौहार की स्थापना की गई थी। लोग उत्तम तथा दर्शनीय गौ, बछड़े, बैलों आदि को सजाकर निकालते थे और उनमें इस बात की होड़ होती थी कि किसके पशु सर्वोत्तम और सुंदर माने जाते हैं। जब यह त्यौहार भली प्रकार प्रचलित था, तब उसमें भाग लेने वाले व्यक्ति अवश्य ही वर्ष भर अपने पशुओं को इसके लिए तैयार करते थे और

हर एक उपाय से उनको स्वस्थ, दर्शनीय और बलवान् बनाने की चेष्टा करते रहते थे। इसी प्रकार के प्रयत्नों का परिणाम था कि प्राचीन काल में यहाँ एक-एक परिवार के पास दस-दस लाख तक गाएँ थीं और दूध-दही से होली खेली जाती थी।

खेद का विषय है कि बहुत समय से यह त्यौहार देश के अधिकांश भागों में बंद-सा हो गया है। इधर जबसे गौ-रक्षा आंदोलन चला है और गौशालाओं की स्थापना की गई है, तब से पुनः इसकी तरफ लोगों का कुछ ध्यान गया है और थोड़े-से नगरों में तथा विशेषतः ब्रज में इसको मनाया जाता है, पर अभी तक इसका जो रूप दिखाई पड़ रहा है, वह देश और समाज-हित की दृष्टि से बहुत कम उपयोगी है और उससे इस त्यौहार का वास्तविक उद्देश्य भी सिद्ध नहीं होता। आवश्यकता है कि हम इस दिन केवल गौओं का जुलूस निकालकर ही संतुष्ट न हो जाएँ और गौओं को मिठाई आदि खिलाकर ही इस त्यौहार की पूर्ति न समझ लें, वरन् इस अवसर पर अपने पशु-धन का निरीक्षण करें, उसकी वृद्धि तथा दशा सुधारने की योजना करें। भारतीय कृषि के लिए अब भी पशुओं की आवश्यकता बहुत अधिक है और भूमि को जोतने के लिए उत्तम श्रेणी के बैलों की पर्याप्त संख्या होना अनिवार्य है। इसी प्रकार दूध और घी की पूर्ति के लिए गाय और भैंसों की तरक्की होना अत्यावश्यक है। पर ये कार्य केवल बातों से अथवा गौमाता की जबानी-भर भक्ति कर लेने से पूरे नहीं हो सकते। इनके लिए पशुओं की नस्ल को सुधारने, उन्हें उपयुक्त आहार देने तथा उनके रहने के लिए उचित ढंग के स्थान बनाने की आवश्यकता है।

इतना ही नहीं, इस त्यौहार का उद्देश्य यह भी है कि हम वर्ष में एक ही दिन पशुओं की आव-भगत (खातिर) करके संतुष्ट न हो जाएँ, वरन् उनके साथ सदैव दया का व्यवहार करें। क्या आपने कभी गाड़ियों में जोते जाने वाले बैल-भैंसों को पिटते नहीं देखा है, ताँगों के घायल घोड़ों को छह-छह और आठ-आठ आदमियों का बोझा खींचते नहीं देखा है, छोटे-छोटे गधों पर

दो-दो, तीन-तीन मन बोझा लाद कर सोटों से मार-मार कर चलाते नहीं देखा है ? इन सब मूक पशुओं के साथ इस प्रकार का राक्षसी व्यवहार करना मनुष्य को शोभा नहीं देता और इस तरह के व्यवहार से पशुओं की दशा भी नहीं सुधर सकती। इसलिए अगर हम गोपाष्टमी का त्यौहार सच्चे अर्थों में मनाना चाहते हैं और हमारी गौ-भक्ति दिखावटी नहीं है, तो हमको अवश्य ही अपने समस्त पशु-धन की अवस्था के सुधारने की ओर ध्यान देना चाहिए। कहने के लिए तो हम निरामिषभोजी होने का दावा करते हैं और चींटियों, पक्षियों आदि को दाना देकर दया का भी दिखावा करते हैं, पर हमारे अस्थि-पिंजर मात्र पशुओं को देखकर कोई हमारी बात का विश्वास नहीं कर सकता, जबकि योरोप, अमरीका के मांसाहारी कहलाने वाले देशों में बीस-बीस सेर और एक-एक मन तक दूध देने वाली असंख्यों गायें दिखलाई पड़ती हैं, हमारे यहाँ की गायों के दूध का औसत एक या दो सेर प्रति गाय से अधिक न होगा। वहाँ की उन गायों के शरीर, खाने-पीने की व्यवस्था, रहने के स्थानों की स्वच्छता तथा ऊपरी देख-भाल को देखकर आप चकित रह जाएँगे और अपने मन में पूछेंगे कि गायों की पूजा ये विदेशी करते हैं या हमारे देशवासी ?

पशुओं की दशा को सुधारना हमारा कर्तव्य केवल इसी कारण नहीं है कि वह दया का एक अंग है और उसके बिना हम निर्दयी, असभ्य और असंस्कृत जातियों में गणना किये जाने योग्य समझे जाएँगे, वरन् इससे भी बड़ा कारण यह है कि इसमें हमारा ही एक बहुत बड़ा हित निहित है। जैसा हम पहले बतला चुके हैं, हमारा देश कृषि-प्रधान है और हम मुख्यतया शाकाहारी लोग हैं। ऐसी अवस्था में भोजन के लिए अन्न तथा पौष्टिकता के लिए घी-दूध हमको पशुओं द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए स्वार्थ और परमार्थ दोनों दृष्टियों से हमारा यह कर्तव्य है कि हम पशुओं के प्रति अपने कर्तव्य को सदैव स्मरण रखें और उनके साथ ऐसा व्यवहार करें, जिससे हमारे ऊपर कोई निर्दयता और मनुष्यत्वहीनता का लांछन न लगा सके।

❑ ❑

बसंत पंचमी

हमारे अधिकांश त्यौहारों का किसी न किसी देवता की पूजा और उपासना से संबंध है, पर बसंत पंचमी का त्यौहार विशेष रूप से ऋतु-परिवर्तन के उपलक्ष्य में एक सामाजिक समारोह माना जाता है। यह मानसिक उल्लास और आह्लाद के भावों को व्यक्त करने वाला त्यौहार है। भारतवर्ष में बसंत का अवसर बहुत सुहावना, सौंदर्य का विकास करने वाला और मन की उमंगों में वृद्धि करने वाला माना जाता है। वैसे इस ऋतु का आगमन होली के आस-पास होता है, पर बसंत पंचमी का त्यौहार माघ शुक्ल पंचमी को ऋतुराज बसंत के स्वागत के रूप में मना लिया जाता है और उसी दिन से होली की तैयारियाँ शुरू कर दी जाती हैं। मनुष्य ही नहीं, जड़ और चैतन्य प्रकृति भी इस महोत्सव के लिए इसी समय से नया श्रृंगार करने लग जाती है। वृक्षों और पौधों में पीले, लाल नवीन पत्ते और फूलों में कोमल कलियाँ दिखलाई पड़ने लगती हैं। आम के वृक्षों का सौरभ चारों ओर बिखरने लगता है। सरसों के फूलों की शोभा तो अद्वितीय दिखलाई पड़ती है और कदाचित् उन्हीं के रंग के आधार पर मनुष्य भी बसंती रंग के वस्त्र पहनना आवश्यक समझने लगे हों। कोयल और भ्रमर भी अपना मधुर संगीत आरंभ कर देते हैं। वास्तव में बसंत का अवसर जीव-जंतु और वनस्पतियों की भी काया-कल्प का अवसर होता है और उस समय सबमें नव-जीवन का विकास होते देखा जाता है।

बसंत की नव-जीवन प्रदायिनी शक्ति का प्रभाव हमारे शरीर पर ही नहीं पड़ता, वरन् उस समय हमारी मानसिक शक्तियाँ विकासोन्मुख होती हैं और उनके द्वारा हम ज्ञान-विज्ञान, साहित्य के क्षेत्र में विशेष रूप से प्रगति कर सकते हैं। शरीर और मन का एक-दूसरे से अति निकट का संबंध है। जिस समय मनुष्य का स्वास्थ्य निर्बल होगा या उसे किसी प्रकार की पीड़ा होगी, उस

समय मानसिक कार्य भी यथोचित रूप में नहीं हो सकते। इसलिए बसंत-आगमन के समय जब शीत का अवसान होकर हमारी देह और मन नवीन शक्ति का अनुभव करने लगते हैं, हमें अपना ध्यान जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों की ओर लगाना चाहिए, आगामी वर्ष भर के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उपयुक्त सामग्री एकत्रित कर लेनी चाहिए।

संभवतः यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने बसंत पंचमी के दिन सरस्वती-पूजा की प्रथा चलाई थी। सरस्वती विद्या और बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है और उसकी कृपा के बिना संसार का कोई महत्त्वपूर्ण कार्य समुचित रूप में सफल नहीं हो सकता। प्राचीन-समय में जब यहाँ के निवासी सच्चे हृदय से सरस्वती की उपासना और पूजा करते थे, तो इस देश को जगत् गुरु की पदवी प्राप्त हुई थी और दूर-दूर के देशों के विद्याभिलाषी यहाँ सत्य-ज्ञान की खोज में आते थे और भारतीय गुरुओं के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन करके अपने को धन्य समझते थे। पर उसके बाद जब वहाँ के लोगों ने सरस्वती की उपासना छोड़ दी और वे बसंत के त्यौहार को सरस्वती-पूजा के बजाय कामदेव की पूजा का त्यौहार समझने और उस दिन मदन-महोत्सव मनाने लगे, तब से विद्या-बुद्धि का ह्रास होने लगा और अंत में ऐसा समय आ गया कि यहाँ के विद्यार्थियों को ही अन्य देशों में जाकर अपने ज्ञान की पूर्ति करनी पड़ी।

इस समय बसंत के अवसर पर सरस्वती-पूजा की प्रथा विशेष रूप से बंगाल में ही प्रचलित है। दुर्गा-पूजा तो बंगालियों का सर्व प्रधान त्यौहार है ही, पर सरस्वती-पूजा भी वे काफी धूम-धाम से करते हैं। वहाँ इसके लिंए मिट्टी की बड़ी सुंदर मूर्ति बनाई जाती है, जिसकी लागत काफी होती है और उसकी पूजा का उत्सव भी पर्याप्त समारोह के साथ मनाया जाता है। अन्य प्रांतों के निवासियों को भी बंगाली भाइयों से इस संबंध में प्रेरणा लेनी चाहिए और बसंत पंचमी को वास्तविक रूप से शिक्षा-प्रचार के

उत्सव के रूप में मनाना चाहिए, जिससे सरस्वती देवी की हम पर कृपा हो और हम ज्ञान के क्षेत्र पुनः जगद्गुरु की पदवी के योग्य बन सकें।

वर्तमान समय में साधारण पढ़-लिख सकना तो सभ्यता का आवश्यकीय अंग माना गया है। पर खेद है कि हमारे देश के ६० प्रतिशत व्यक्ति अभी तक अक्षर-ज्ञान भी नहीं रखते। यह एक ऐसी बात है, जिसके कारण हम उन सभ्य जातियों के सम्मुख, जिनकी १०० प्रतिशत जनता शिक्षित है, आँख नहीं उठा सकते। इस अवस्था को शीघ्र से शीघ्र बदलना हमारा कर्तव्य है और शिक्षा-प्रसार के लिए जिससे जहाँ तक बने उद्योग करना परम धर्म है। देश से निरक्षरता का चिह्न मिटा दिया जाए, इस बात का व्रत हमको बसंती पंचमी के त्यौहार पर ग्रहण करना चाहिए।

❑ ❑

महा शिवरात्रि

महा शिवरात्रि का व्रत फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को होता है और इस दिन शिवजी की पूजा बड़े धूम-धाम से की जाती है। इस व्रत की कथा इस प्रकार कही जाती है।

प्रत्यंत देश में एक बहेलिया रहता था, जो प्रतिदिन जीवों को मारकर अपने परिवार का पालन करता था। उस पर एक साहूकार का कुछ रुपया कर्ज था, जिसे समय पर न चुका सकने के कारण उसे एक शिव-मंदिर में बंद कर दिया गया। उस दिन फाल्गुन कृष्ण तेरस थी। वहाँ पर बहेलिया ने अगले दिन शिवरात्रि के व्रत की बात सुनी। दूसरे दिन साहूकार ने ऋण चुकाने का वायदा कराके उसे छोड़ दिया। वह अपने धंधे के लिए जंगल में गया, पर उसे कोई शिकार न मिला। सायंकाल के समय भूख से व्याकुल होकर, वह एक बेल के पेड़ के ऊपर चढ़ गया और बेल के पत्ते तोड़कर नीचे गिराने लगा। वहाँ एक शिवजी की मूर्ति स्थापित थी और वे पत्ते अनायास उस पर चढ़ने लगे। पेड़ पर बैठे-बैठे उसने देखा कि एक गर्भवती हिरणी मंदगति से उसी पेड़ के पास वाले तालाब की तरफ आ रही है। बहेलिया ने उसे मारने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाया। इस पर हिरणी ने कहा कि, मैं गर्भवती हूँ और बच्चा पैदा होने का समय भी आ चुका है। अतः तुम मुझे इस समय छोड़ दो, मैं बच्चे को उसके पिता को सौंपकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आ जाऊँगी। बहेलिया का हृदय शिवजी के व्रत के प्रताप से शुद्ध हो गया था। उसे दया आ गई और उसने हिरणी को छोड़ दिया।

आधी रात बीतने पर एक दूसरी हिरणी दिखलाई दी। जब वह उसे मारने को उद्यत हुआ तो उसने कहा कि, मैं रजस्वला हूँ और पति की कामना कर रही हूँ। अगर तुमने मुझे अभी मार डाला तो मेरी कामना अतृप्त रह जाएगी। इसलिए तुम इस समय

मुझे छोड़ दो, मैं अपनी कामना की पूर्ति करके सुबह तुम्हारे पास अवश्य आ जाऊँगी। व्याध ने उसे भी छोड़ दिया।

रात्रि का तीसरा पहर बीत जाने पर उसने देखा कि एक हिरणी बच्चे के साथ घूमती-फिरती पानी पीने आ रही है। उसने इसको मारना चाहा, तो हिरणी ने कहा कि, आप मुझे इतना अवकाश दें कि मैं इस बच्चे को इसके पिता के पास पहुँचा आऊँ, तब आप मुझे खुशी से मार डालना। व्याध ने उसकी बात भी मान ली।

जब प्रातःकाल होने में थोड़ा ही समय रह गया तो एक मोटा-ताजा हिरण तालाब के पास पहुँचा। व्याध ने उसे मारने का उपक्रम किया तो वह कहने लगा—हे व्याध ! मेरी हिरणियाँ मुझे ढूँढ़ रही होंगी। इसके सिवाय वे तुमसे जिस-जिस बात की शपथ खाकर गईं हैं, मेरे न जाने से उसे भी पूरा न कर सकेंगी। इसलिए मुझे इस समय जाने दो, जिससे मैं इस संबंध में उचित व्यवस्था कर सकूँ। आज की घटना से तथा शिव-रात्रि के प्रभाव से व्याध कुछ आश्चर्य में पड़ गया था और उसने हिरण को भी जाने दिया। थोड़ी ही देर बाद वे तीनों हिरणी और हिरण उसके सामने उपस्थित हो गये, परंतु अब उसके विचार बदल गये थे और उसने उनको वापस लौटा दिया। जब शिवजी ने व्याध की ऐसी पवित्र मनोवृत्ति देखी, तो उन्होंने प्रकट होकर उसे अपने लोक में स्थान दिया।

× × ×

शिवजी का स्थान हिंदू-धर्म में बहुत ऊँचा है और एक दृष्टि से सर्वोपरि है, क्योंकि जहाँ धर्म-शास्त्रों और पुराणों में अन्य सब देवताओं का चरित्र-चित्रण करते हुए उनको स्वार्थ के वशीभूत अथवा वैभव तथा अधिकार का अभिलाषी दिखलाया गया है, एक शिवजी ही ऐसे देवता बतलाये गये हैं, जो संपत्ति और वैभव के बजाय त्याग और अकिंचनता को वरण करते हैं, वे सर्व शक्तिमान् हैं, उन्हीं के इशारे पर संसार में प्रलय का दृश्य

उपस्थित होता है और उनका तीसरा नेत्र बड़ी से बड़ी शक्ति को जलाकर राख करने की क्षमता रखता है। पर यह सब होने पर भी वे सदा नंगे-दिगंबर, दीन-हीन, भूत-प्रेतों के साथी बने रहते हैं। उन्होंने अमृत का त्यागकर गरल को पिया, हाथी तथा घोड़े को छोड़कर बैल की सवारी स्वीकार की और हीरा, मोती रत्नों को त्यागकर सर्प और नर-मुंडों के आभूषण अपनाये। इस प्रकार शिवजी का स्वरूप हमको इस बात की शिक्षा देता है कि हमें प्रकृति ने यदि विशेष शक्ति या योग्यता प्रदान की है, तो उसका उद्‌देश्य यह नहीं है कि हम स्वार्थी बन जाएँ और अपनी शक्ति का उपयोग अपने सुख और भोगों के लिए ही करें। शिवजी का आदर्श बतलाता है कि जिसको जितनी अधिक शक्ति मिली है, उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही महान् है। ऐसी विशेष सामर्थ्य, जो अन्य साधारण लोगों में दिखलाई नहीं पड़ती, परमात्मा के वरदान स्वरूप समझनी चाहिए और उसका उपयोग स्वार्थ-साधन जैसे तुच्छ उद्‌देश्य से करना रत्न को काँच के मूल्य में बेच देने के समान है। मानव-जीवन की सफलता इसी में है कि हम व्यक्तिगत लाभ और सुख का ख्याल छोड़कर अपनी शक्तियों का उपयोग परोपकार के लिए ही करें।

भगवान् शिव का नंगा रहना अपरिग्रह का भी प्रतीक है। संसार में तरह-तरह की भोग-सामग्री का कोई अंत नहीं है और वह मनुष्य को ज्यों-ज्यों प्राप्त होती जाती है, त्यों-त्यों उसकी लालसा भी बढ़ती जाती है। आज संसार में जितने झगड़े-टंटे दिखलाई पड़ते हैं, उनके सबके मूल में यही परिग्रह की कामना काम कर रही है। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि भोग की सामग्री को अधिक से अधिक परिमाण में एकत्रित रख ले, जिससे भविष्य में उसकी कमी से तकलीफ न उठानी पड़े। मनुष्य का यह लालच इतना बढ़ जाता है कि वह यह भी विचार नहीं करता कि अधिक समय रखे रहने से यह चीज खराब हो जायेगी या कुछ ही समय बाद ऐसी परिस्थिति आने की संभावना है, जबकि उस

चीज की आवश्यकता ही न रहे। इसे चाहे लोभ कहिए, चाहे मोह कहिये अथवा अज्ञान कहिए, पर वर्तमान समय में मनुष्यों की यह स्वार्थमयी प्रवृत्ति दिन पर दिन बढ़ती जा रही है और इसके कारण उनमें परस्पर प्रतिद्वंद्विता, ईर्ष्या, द्वेष, कलह की वृद्धि भी होती जा रही है। यह व्यक्तिगत द्वेष-भाव ही आगे बढ़कर सामूहिक रूप ग्रहण कर लेता है और बड़े-बड़े राष्ट्र यह प्रयत्न करने लगते हैं कि संसार की भोग-सामग्रियों का अधिकार हमारे ही हाथ में रहे और उसमें से जो थोड़ा बहुत हिस्सा अपनी खुशी से हम दूसरों को दे दें, उसी पर वे संतोष करें। ऐसी मनोवृत्ति के होते हुए संसार में शांति और सुख की कल्पना करना ही व्यर्थ है। इसका परिणाम नाश-सर्वनाश के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

इस प्रकार शिवजी का चरित्र हमको लोभ, मोह, लालसा के स्थान पर त्याग, अपरिग्रह और परहित-साधन का उपदेश देता है। दूसरों को अधिक से अधिक देना और स्वयं कम से कम ग्रहण करने की भावना ही महान् व्यक्तियों का लक्षण है। जो अपने ही सुख की चिंता में व्यस्त रहेगा दुनिया कभी उसका हृदय से सम्मान नहीं कर सकती, चाहे वह चक्रवर्ती सम्राट् ही क्यों न हो। जिसको हमारे भले-बुरे का कोई ध्यान नहीं और जो हर बात में अपना ही स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, हम भी उसकी तरफ ध्यान क्यों देने लगे ? मनुष्य तो उसी की भक्ति, उपासना, पूजा करेगा जिससे उसे अपने हित की कुछ आशा हो। इसी कारण अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए लोग विभिन्न देवताओं का पूजा-पाठ किया करते हैं। कई देवता प्रसन्न होकर अपने भक्त का कुछ उपकार कर देते हैं। पर उनमें से अधिकांश अपने ही वैभव और अधिकार को कायम रखने की फिकर करते रहते हैं और इस कारण उनसे मनुष्यों का विशेष हित साधन नहीं होता; पर भगवान् शिव औढरदानी कहे जाते हैं और बेल के पत्तों तथा धतूरे के फलों से ही संतुष्ट हो जाते हैं। उनको अपने लिए

किसी भी प्रकार के वैभव की तनिक भी आवश्यकता नहीं और वे अनायास ही कष्ट और अभाव से पीड़ित जनों की कामनाएँ सिद्ध करते रहते हैं। इसीलिए अन्य 'देवों' के मुकाबले में वे 'महादेव' कहे जाते हैं।

इस समय संसार में धन का बोलबाला है और बनिये, व्यापारी ही नहीं पंडितों के मुख से भी यही निकलता है कि 'सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयति।' अर्थात् स्वर्ण में सभी गुण विद्यमान हैं। इस मनोवृत्ति ने मनुष्य को कितना पतन के गर्त में गिराया है, उसका वर्णन कर सकना संभव नहीं। धन के लिए मनुष्य कुटुंब-परिवार को छोड़ देता है, भाइयों से शत्रु की तरह लड़ता है, माता-पिता की तरफ से भी आँखें फेर लेता है, मान-अपमान की कुछ भी परवाह नहीं करता, धर्म-कर्म का ध्यान भुला देता है। इस प्रकार मनुष्य ने धन को भगवान् से भी ऊँचा स्थान दे दिया है और इसी का परिणाम है कि आज सच्चे धार्मिक जनों के दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। इस शोचनीय अवस्था में हमारा कर्तव्य है कि हम देवादिदेव महादेव की शरण लें, कि वे हमको इस धन के प्रपंच से मुक्त करके अपरिग्रह की महिमा समझने का वरदान दें।

❑ ❑

होली

होली का त्यौहार समस्त हिंदू-त्यौहारों में अपने ढंग का निराला है। वैसे तो यह फसल के तैयार होने के उपलक्ष्य में 'वासंती नव सस्येष्टि' यज्ञ का ही परिवर्तित रूप है और आजकल भी होली में नये अन्न की बालों को भूनकर खाना अनिवार्य माना जाता है, पर अब इसमें और भी अनेक सामाजिक तत्त्वों का समावेश हो गया है। इस त्यौहार की सबसे बड़ी विशेषता जो हमको दिखलाई पड़ती है, यह है कि इसमें सामाजिक समानता का बीज विद्यमान है। होली ही एकमात्र ऐसा त्यौहार है जिसमें हिंदू-समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के संपर्क में आ सकता है और छोटे से छोटा व्यक्ति भी उच्च स्थिति के व्यक्ति के साथ बेतकुल्लुफी का व्यवहार कर सकता है। यद्यपि हम इस त्यौहार में अनेक व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली गंदगी, अश्लीलता, मूर्खतापूर्ण व्यवहार का समर्थन नहीं कर सकते, तो भी इसमें पारस्परिक प्रेम, निःसंकोच उल्लास, हार्दिक हास्य-विनोद और समानता का तत्त्व पर्याप्त रूप से समाया रहता है।

होली का आरंभ कब और कैसे हुआ, इसके संबंध में जनता में कई प्रकार के विश्वास प्रचलित हैं। अधिकांश लोग तो इसका संपर्क होलिका द्वारा प्रह्लाद को जलाये जाने की घटना से जोड़ते हैं। भविष्य पुराण में लिखा है कि ढुँढला नामक राक्षसी ने शिव-पार्वती की तपस्या करके यह वरदान प्राप्त किया था कि वह सुर, असुर, नर, नाग किसी से न मारी जा सके और जिस बालक को पा जाए उसे खा सके। पर वरदान देते समय महादेवजी ने यह शर्त लगा दी कि जो बालक वीभत्स आचरण करते और निर्लज्जतापूर्वक फिरते पाये जाएँगे उनको तू न खा सकेगी। इस कारण उस राक्षसी से बचने के लिए लड़के इस त्यौहार पर तरह-तरह के वीभत्स और निर्लज्जतापूर्ण स्वांग करते हैं और गंदी-गंदी गालियाँ बकते हैं।

होली का त्यौहार फाल्गुन की पूर्णिमा को होता है। आज के दिन महर्षि वशिष्ठ जी ने सब मनुष्यों के लिए अभयदान माँगा था, जिससे वे निःशंक होकर हँसें-खेलें, उछलें-कूदें। आज के दिन बालक काठ की तलवार लेकर योद्धाओं की नकल करते हुए विचरण क़रते हैं। चाहे जहाँ से लकड़ी, कंडे उठाकर होली में डाल देना, धूल और राख उड़ाना, नालियों की कीचड़ तक से परहेज न करना भी आज के दिन बालकों के लिए क्षम्य समझा जाता है। बड़ी आयु के व्यक्ति रंग से भरी पिचकारियों और गुलाल, अबीर आदि से प्रेमाभिवादन करते हैं। शास्त्रों में गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा और फलों से होलिका का पूजन करने का विधान लिखा है। आजकल भी स्त्रियाँ गोबर से तरह-तरह की आकृति की वस्तुएँ बनाकर पूरी, पकवान आदि के साथ होली में डालती हैं।

इस अवसर पर सब लोग ऊँच-नीच, छुटाई-बड़ाई का विचार छोड़कर खुले दिल से एक-दूसरे से मिलते हैं। अगर गत वर्ष में किसी कारण परस्पर मनोमालिन्य, बैर, विरोध उत्पन्न हो गया हो, तो उसको होली की अग्नि में भस्म करके पुनः मित्रता स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार होली का त्यौहार प्रेम-प्रसार का पर्व है। यह बिछड़े हुए, फटे हुए हृदयों को मिला देता है। जात-पाँत का जो घातक विष हिंदू-समाज में व्याप्त हो गया है और जिसके कारण इस देश में फूट तथा कलह का साम्राज्य फैल गया, वह भी होली के दिन अधिकांश में हट जाता है। आज का दिन पूर्णतः आनंद और उल्लास का समझा जाता है और किसी रूढ़ि अथवा नियम के कारण लोग उस आनंद को भंग करना पसंद नहीं करते। इस प्रकार यदि विचारपूर्वक देखा जाए, तो होली का त्यौहार सामूहिकता के भाव की वृद्धि करने वाला तथा संगठन और ऐक्य को सुदृढ़ बनाने वाला सिद्ध होता है।

पर जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं कि इस अवसर पर लोगों को हँसी-मजाक और नियमोल्लंघन की छूट मिलने का यह अर्थ

नहीं है कि हम ऐसा आचरण करें जिससे उपर्युक्त उद्देश्य सिद्ध होने के बजाय उलटा वैमनस्य का भाव उत्पन्न हो अथवा नीच वृत्तियों को जड़ जमाने का मौका मिले। जैसे अधिकांश व्यक्ति होली को नशा करने का दिन समझते हैं और मनमाने ढंग से भंग, शराब आदि का सेवन करके उन्मत्त बन जाते हैं। वे लोग उस अवस्था में ऐसे कृत्य कर डालते हैं, जिनसे झगड़े-लड़ाई उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य लोग इस अवसर को काम-वासना की पूर्ति का अवसर समझ लेते हैं। जायज-नाजायज तरीके से दुराचार में प्रवृत्त हो जाते हैं। आजकल एक कुप्रथा भाभियों से अश्लीलतापूर्ण हँसी-मजाक करने की भी समाज में घुस गई है और होली के अवसर पर अनेक व्यक्ति सीमोल्लंघन कर देते हैं। इसी प्रकार अश्लीलतापूर्ण गालियाँ बकने में भी लोग ऐसी अति करते हैं कि उसका समर्थन कोई भला आदमी नहीं कर सकता। हम सामाजिक उत्सवों और त्यौहारों में शासकों द्वारा हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं हैं, पर होली के त्यौहार को इन गंदगी और अश्लीलता के शौकीनों ने ऐसा भ्रष्ट कर डाला है कि उसमें सरकार को पुलिस का प्रयोग करना पड़ता है और सैकड़ों आदमी पकड़े भी जाते हैं। पिछले कई वर्षों में इन बुरे रिवाजों के कारण होली के ऐन मौके पर हत्याएँ तक हो चुकी हैं।

इसलिए समाज-हितैषियों और अपने देशवासियों का कल्याण चाहने वाले सभी सज्जनों का कर्तव्य है कि वे होली के त्यौहार को संशोधित रूप में प्रचलित करने का प्रयत्न करें। जैसे आजकल अनेक नगरों के कुछ मौहल्लों में इस अवसर पर सामूहिक चंदा करके केवल रंग-गुलाल की होली और संगीत आदि की व्यवस्था की जाती है। हम मनोरंजन और हास्य-विनोद के विरोधी नहीं हैं, वरन् हम यहाँ तक मानने को तैयार हैं कि हँसना-हँसाना मनुष्य-जीवन के लिए वरदान स्वरूप है और जो हँस नहीं सकता, उसकी गिनती मनुष्यों में नहीं करनी चाहिए। मनोरंजन मानव-जीवन का एक परमावश्यक अंग है और उसके लिए सदैव

उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। पर इन सब बातों में यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि ये कार्य लाभदायक ढंग से किये जाएँ, ऐसे तरीके से नहीं, जिससे हमारी और समाज की हानि हो। यह खयाल करना बड़ी बुद्धिहीनता है कि हँसी-मजाक गंदी या अश्लील बातों के बिना नहीं हो सकता। इस प्रकार के मजाक तो उस व्यक्ति के पतनकारी भावों या कुरुचि के प्रमाण हैं। बड़े से बड़े विद्वान्, त्यागी, तपस्वी, महात्मा, समाज के नेता भी हँसी-मजाक करते हैं, पर उनको गंदगी या अश्लीलता का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतएव हमको भी होली के अवसर पर इन सब कुप्रथाओं से बचकर सुरुचिपूर्ण आमोद-प्रमोद और मनोरंजन का व्यवहार करना चाहिए।

इस समय हमारे समाज में अनेकों त्रुटियाँ ऐसी उत्पन्न हो गई हैं, जिनके कारण हमारी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है, उनमें सामाजिक विषमता की भावना भी एक बड़ी प्रधान समस्या है। इसने हिंदू जाति को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है और इस प्रकार उसकी शक्ति को निर्बल बना डाला है। आजकल बिना एकता के, बिना आंतरिक संगठन के सफलता मिलना असंभव है। हमारे कोई विद्वान् नेता कह भी गये हैं—'संघ शक्ति कलयुगे।' इसी संघ-शक्ति के प्रभाव से ऐसी जातियाँ भी हमको पराजित कर चुकी हैं, जो संख्या और योग्यता की निगाह से हमसे कहीं कम थीं। इसलिए होली के त्यौहार का संदेश यही है कि हम जात-पाँत के कृत्रिम भेद को त्यागकर अपना सामाजिक संगठन वैदिक आदर्श के अनुकूल करें और समाज के किसी व्यक्ति के साथ सामाजिक असमानता का व्यवहार न करें। इसी उपाय से हिंदू जाति को पुनः नव जीवन प्राप्त हो सकता है।

❒ ❒

अक्षय तृतीया

वैशाख शुक्ल पक्ष की तीज को अक्षय तृतीया कहते हैं। यह दिन बड़ा पवित्र माना जाता है और शास्त्रों में कहा गया है कि इस दिन दिये हुए दान और किये गये स्नान, जप, होम आदि सभी कर्मों का फल अनंत होता है। वे सभी अक्षय (नष्ट न होने वाले) होते हैं। शास्त्र में कहा गया है—

वैशाखस्य तृतीयांश्च पूर्वविद्धां करोति वै।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तचेति।।

एक समय युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण से अक्षय तृतीया का माहात्म्य पूछा, तो वे कहने लगे—'हे राजन, इस पुण्य तिथि के पूर्वाह्न में जो पुण्य कार्य किये जाते हैं, उनका फल अक्षय होता है, इसको 'युगादि तृतीया' भी कहते हैं, क्योंकि सतयुग का आरंभ इसी दिन होता है।

पूर्वकाल में एक बड़ा निर्धन, पर सत्यवादी और श्रद्धालु वैश्य 'महोदय' नाम का व्यक्ति था। उसका कुटुंब बड़ा था और आमदनी कम थी, इससे वह प्रायः दुःखी और व्याकुल रहा करता था। उसने वैशाख शुक्ल तृतीया के माहात्म्य में सुना कि इस तिथि को दान-पुण्य का बहुत भारी फल प्राप्त होता है। अतः तृतीया के दिन गंगाजी में स्नान करके उसने विधिपूर्वक देवताओं और पितरों का पूजन किया। फिर आकर ग्रीष्म ऋतु के उपयोगी पदार्थ ओले के लड्डू, सत्तू, पंखा, जल का घड़ा, दही, चावल आदि भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणों को दान में दिये। वह वैश्य यद्यपि बहुत गरीब था और उसके कुटुंबीजन उसके दानादि कार्यों के विरोधी भी थे, पर वह अपनी श्रद्धा के बल पर धर्म-कर्म से विमुख न हुआ। इसके फल से आगामी जन्म में वह कुशावती नगरी का राजा हुआ और उसे अक्षय संपत्ति प्राप्त हुई।

इस प्रकार अक्षय तृतीया का व्रत इस बात की शिक्षा देता है कि मनुष्य को खान-पान के संबंध में संयम से काम लेना चाहिए और ऋतु के अनुसार अपने भोजन और रहन-सहन में परिवर्तन करते रहना चाहिए। जो इस बात पर ध्यान नहीं देगा और केवल स्वाद या रुचि के आधार पर ही चाहे जो कुछ खाता-पीता रहेगा, वह स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकता। भोजन और स्वास्थ्य का बड़ा निकट संबंध है और जैसा भला या बुरा भोजन हम करेंगे वैसा ही हमारा शरीर और मन बनेगा और तदनुसार ही हमारे कर्म भी होंगे। भगवान् ने गीता में स्वयं बतलाया है कि—

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तयस्तथा दानं तेषां भेदमिमं श्रृणु।।
आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्याआहाराः सात्विक प्रियाः।।
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।
यातायामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।

अर्थात् "जैसे यज्ञ, तप, दान तीन-तीन प्रकार के होते हैं, वैसे ही भोजन भी तीन प्रकार का होता है। भोजन सबको अपनी-अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रिय लगता है। आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले भोजन सात्त्विक पुरुषों को प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे, दाहकारक एवं दुःख, चिंता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले भोजन राजस पुरुषों को प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसहीन, दुर्गंधयुक्त, बासी और उच्छिष्ट, अपवित्र है, वह तामस पुरुषों को प्रिय होता है।"

उपरोक्त दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि भोजन बहुत विचारपूर्वक करना चाहिए और हमारे पूर्वज इस बात

का सदैव ध्यान रखते थे। यही कारण है कि उन्होंने जहाँ माघ मास की संक्रांति पर मुख्य रूप से तिल और गुड़ का दान देने को बतलाया, वहाँ वैशाख में ओला के लड्डू और जौ का सत्तू आदि का विधान किया। इसका वास्तविक आशय यही है कि हमको भोजन करने में सदैव परिस्थिति का ध्यान रखना चाहिए और उसके अनुसार स्वास्थ्यप्रद तथा रोगनाशक आहार की व्यवस्था करनी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि हम सदा घी, दूध, मलाई, बादाम, पिस्ता आदि बढ़िया समझे जाने वाले पदार्थों की ही भरमार करते रहें, क्योंकि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि जिन राजा, रईस, सेठ, साहूकार लोगों के यहाँ इन वस्तुओं का भंडार भरा है, वे अक्सर डॉक्टर और वैद्यों की हाजिरी दिया करते हैं और रूखा-सूखा खाने वाले किसान और मजदूर उनकी अपेक्षा कहीं अधिक तंदुरुस्त तथा शक्तिशाली बने रहते हैं।

अक्षय तृतीया के व्रत से हम यह भी सीख सकते हैं कि हमको अपने खाने-पीने और आराम के साथ ही अपने आस-पास के लोगों का भी ख्याल रखना चाहिए और जो बात हम अपने लिए हितकर समझते हैं, उसका लाभ अन्य व्यक्तियों को भी देना चाहिए। इसी भावना से अक्षय तृतीया के व्रत के दिन से अनेक व्यक्ति गर्मियों के मौसम में यात्रियों को पानी पिलाने के लिए प्याऊ (पौसारे) बना देते हैं। कुछ लोग सत्तू, चना-चबैना आदि से गरीबों की सहायता करते हैं।

मनुष्य के अनेक कर्तव्यों और धर्मों की तरह शरीर-रक्षा पर यथोचित ध्यान देना भी एक परम धर्म है, क्योंकि प्रत्येक धर्म का साधन शरीर द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से शरीर के आधारभूत भोजन की उपयुक्तता का विचार रखना अनिवार्य है और इस बात का प्रयत्न हमको केवल अपनी व्यक्तिगत हैसियत से ही नहीं वरन् समस्त समाज के कल्याण की दृष्टि से भी करना चाहिए।

❑ ❑

निर्जला एकादशी

यद्यपि पुराणों और धर्म-शास्त्रों में वर्ष की सभी एकादशियों को व्रत रखने का विधान है और फलों के अनुसार उनके भिन्न-भिन्न नाम भी हैं जैसे 'मोक्षदा' 'सफला', 'पापमोचनी', 'योगिनी' 'पुत्रदा' 'जया', 'विजया', 'वरूथिनी' आदि। 'निर्जला' ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की एकादशी को कहते हैं और इसका महत्त्व सबसे अधिक माना जाता है। यहाँ तक कहा गया है कि इस एक ही एकादशी का व्रत रखने से चौबीसों एकादशियों का पुण्य प्राप्त हो जाता है। **इसकी कथा इस प्रकार है—**

एक बार भीमसेन महात्मा व्यास के पास गए और कहने लगे कि 'भगवन ! मुझे अर्जुन, नकुल और सहदेव यह कहकर चिढ़ाते हैं कि तुम किसी एकादशी को व्रत नहीं रखते, इसलिए तुम्हें नर्क में जाना पड़ेगा। व्यासजी ने कहा कि "सचमुच एकादशी के दिन अन्न खाना बड़ा पाप होता है।" इस पर भीमसेन ने प्रार्थना की कि "महाराज ! मुझे तो भोजन किए बिना चैन नहीं पड़ता, अतः ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मैं यम-यातना से बच सकूँ।" व्यासजी ने कहा "भीमसेन ! तुम ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत रहो, इससे तुम्हें चौबीसों एकादशी का फल प्राप्त होगा।" तभी से भीमसेन इस व्रत को रहने लगे और इसका नाम "भीमसेनी एकादशी" भी प्रसिद्ध हो गया।

× × ×

वास्तव में एकादशी के दिन व्रत रखने का विधान हमारे ज्ञान-संपन्न ऋषियों की दूरदर्शिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। घर-गृहस्थी में मनुष्य प्रायः जिस प्रकार खाते-पीते हैं, उसमें आहार-शास्त्र की दृष्टि से अनेकों त्रुटियाँ रह जाती हैं। किसी-किसी दिन स्वादवश अधिक खा लेने से अथवा ऐसे पदार्थ खा लेने से जिनका पचना अपेक्षाकृत कठिन होता है, मनुष्य के पेट में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। वैसे भी आजकल हमारा रहन-सहन जैसा हो गया है,

उससे नवयुवकों का हाजमा भी जैसा होना चाहिए, वैसा देखने में नहीं आता। इसके फलस्वरूप पेट में थोड़ी-बहुत गड़बड़ी होती रहती है और धीरे-धीरे कई दिन में हमारे पाचन यंत्र अथवा आमाशय का भार बढ़ जाता है। बहुत से लोग इसके प्रतिकार के लिए हाजमे के 'चूरन' आदि का सेवन किया करते हैं, पर वह एक बहुत बड़ी गलती है। कोई 'चूरन' पचाने की शक्ति की वृद्धि नहीं कर सकता। उससे दस्त होकर हमारे पेट का भार कम हो सकता है, पर उसका प्रभाव हमारी पाचन-शक्ति पर बुरा ही पड़ता है और वह पहले से कमजोर हो जाती है। इसलिए पेट के भार को ठीक करने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि हम बीच-बीच में किसी नियत दिन उपवास रखें। इससे उस दिन आमाशय को नित्य के काम से छुट्टी मिल जाती है और वह पेट में जमा हो गये अनावश्यक पदार्थों को पचाकर निकाल देता है, जिससे हमारे समस्त स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

उपवास से शारीरिक और मानसिक लाभ उठाने के लिए यह अनिवार्य नहीं कि केवल एकादशी को ही उपवास रखा जाए। आवश्यकतानुसार अन्य किसी भी दिन उपवास रखा जा सकता है। पर यदि हमको कोई खास शारीरिक व्याधि नहीं है और स्वास्थ्य-रक्षा तथा मन की पवित्रता की दृष्टि से हम शरीर की शुद्धि के लिए उपवास करते हैं, तो उसके लिए एक नियत दिन होना अच्छा है और वह दिन एकादशी होना अधिक लाभदायक है। कुछ विचारशील सज्जनों ने यह निर्णय किया है कि जिस प्रकार सूर्य-चंद्रमा के आकर्षण का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है, उसी प्रकार मनुष्यों के शरीर पर भी पड़ता है। एकादशी के दिन उस प्रभाव की स्थिति कुछ ऐसी होती है कि उस दिन किया गया उपवास शारीरिक उत्तेजना को शांत करके स्वास्थ्य की विशेष रूप से उन्नति करता है।

कुछ भी हो उपवास मनुष्य की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आवश्यक है और हर तरह के रोगों को दूर करने का सबसे

विश्वस्त, निश्चित और बिना खर्च का इलाज है। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी गत पचास वर्षों में उपवास के महत्त्व पर बहुत से प्रयोग किये हैं और अब उन्होंने 'उपवास चिकित्सा' के नाम से एक स्वतंत्र चिकित्सा-प्रणाली को ही जन्म दे दिया है, जिसके अनुसार अनेक स्थानों में गंभीर रोगों का इलाज सफलतापूर्वक किया जाता है। ऐसी दशा में यदि हम अपने शास्त्रों के वचनों के अनुसार प्रति १५ वें दिन विश्वास और श्रद्धापूर्वक एकादशी का व्रत करें, उस दिन जप, संयम, स्वाध्याय द्वारा मन को भी पवित्र रखें, तो इससे अकथनीय लाभ होगा, इसमें क्या संदेह है ?

❑ ❑

ऋषि पंचमी

यह व्रत मुख्यतया स्त्रियाँ ही करती हैं और यह भाद्रपद शुक्ल पंचमी को किया जाता है। इस व्रत में हल से जोते हुए खेत से उत्पन्न होने वाली समस्त वस्तुएँ वर्जित मानी जाती हैं, इसलिए फलाहार के रूप में भी जोते हुए खेत की वस्तुओं को नहीं खाना चाहिए और केवल वे ही पदार्थ काम में लाने चाहिए, जो बिना जोते बोये स्वयमेव उत्पन्न होते हैं, जैसे साठी का चावल, नारी (करमुआ) का शाक इत्यादि।

यह व्रत अशुद्धाचार के दोषों को मिटाने के लिए किया जाता है। विशेषत: जो स्त्री रजस्वला होने के अवसर पर सबको छूती रहती है, उसका दोष इस व्रत से ही मिटता है। धर्म-शास्त्र में कहा गया है कि रजस्वला स्त्री पहले दिन चांडालिनी के समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी के समान और तीसरे दिन धोबिन के समान अछूत रहती है और चौथे दिन स्नान कर लेने पर शुद्ध होती है। पर जो स्त्रियाँ इस नियम का ख्याल न करके रजस्वला अवस्था में घर के काम-काज करती रहती हैं, वे बड़े पाप की भागी होती हैं।

इस दिन प्रातःकाल किसी नदी या सरोवर पर जाकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए। हाथ-मुँह धोने के बाद पंचगव्य बनाकर दोपहर के स्नान का संकल्प लें। घर में रंग-बिरंगा सर्वतोभद्र मंडल बनाकर सप्त ऋषियों की पूजा करें। सब सामग्री दक्षिणा के साथ आचार्य को दे दें और स्वयं ऋषि-अन्न का भोजन करें। इस व्रत के संबंध में कई कथाएँ कही जाती हैं। उनमें से एक भविष्योत्तर पुराण में दी गई कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

सतयुग में वेद-वेदांग जानने वाला सुमित्र नाम का ब्राह्मण अपनी स्त्री जयश्री के साथ रहता था। वे खेती करके जीवन-निर्वाह करते थे। उनके पुत्र का नाम सुमति था, जो पूर्ण पंडित और अतिथि-सत्कार करने वाला था।

किसी समय जयश्री रजस्वला अवस्था में अज्ञानवश घर का सब काम करती रही और अपने पति तथा अन्य ब्राह्मणों का स्पर्श भी करती रही। समय आने पर संयोगवश दोनों की मृत्यु एक ही साथ हुई। जयश्री ने कुतिया का जन्म पाया और उसका पति सुमित्र बैल बना। भाग्यवश दोनों अपने पुत्र सुमति के ही घर में रहने लगे।

एक बार सुमति ने अपने माता-पिता का श्राद्ध किया। उसकी स्त्री ने ब्राह्मण-भोजन के लिए खीर पकाई, जिसे अनजान में एक साँप ने जूठा कर दिया। कुतिया इस घटना को देख रही थी। उसने यह सोचकर कि खीर खाने वाले ब्राह्मण मर जाएँगे, स्वयं खीर को छू दिया। इस पर क्रोध में आकर सुमति की स्त्री ने कुतिया को खूब पीटा। उसने फिर सब बर्तनों को स्वच्छ करके दुबारा खीर बनाई और ब्राह्मणों को भोजन कराया और उनका जूठन जमीन में गाढ़ दिया। इस कारण उस दिन कुतिया भूखी रह गई।

जब आधी रात का समय हुआ तो कुतिया बैल के पास गई और सारा वृत्तांत उसे सुनाया। बैल ने दुःखी होकर कहा "आज सुमति ने मुँह बाँधकर मुझे हल में जोता था और घास तक चरने न दी। इससे मुझे भी बड़ा कष्ट हो रहा है।" सुमति दोनों की बातें सुन रहा था और पशु-पक्षियों की भाषा समझ सकने के कारण उसे मालूम पड़ गया कि कुतिया और बैल हमारे माता-पिता हैं। उसने दोनों को पेट भर भोजन कराया और फिर ऋषियों के पास जाकर माता-पिता के पशु योनि में जन्म लेने का कारण और उनके उद्धार की विधि पूछी। ऋषियों ने उसके माता-पिता के उपरोक्त पाप को बतलाया और उनके उद्धार के लिए ऋषि-पंचमी का व्रत रहने का आदेश दिया। ऋषियों की आज्ञा के अनुसार सुमति ने विधिपूर्वक श्रद्धा के साथ ऋषि-पंचमी का व्रत किया, जिसके फल से उसके माता-पिता पशु योनि से छूट गए।

इस कथा से हमको यह शिक्षा मिलती है कि स्वच्छता की मनुष्य-जीवन में बड़ी आवश्यकता है। जो व्यक्ति गंदे रहते हैं, वे अपना और दूसरों का भी नुकसान करते हैं। गंदगी अनेक रोगों की जड़ है और फिर जो शरीर से गंदा रहता है, उसका मन भी स्वच्छ रह सकना कठिन है। बहुत बड़े तपस्वियों और समाधि में लीन रहने वाले योगियों की बात तो हम नहीं करते, पर जो लोग समाज में रहते हैं और सब तरह के लोगों से लेन-देन का व्यवहार करते हैं, उनकी गंदगी से दूसरों का भी अपकार होता है और यह एक बड़ा पाप है। इसलिए हमको सदा शरीर और मन से शुद्ध रहने का यत्न करना चाहिए और खान-पान में भी यथासंभव सादगी से काम लेना चाहिए।

❑ ❑

अनंत चतुर्दशी

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को अनंत भगवान् का व्रत किया जाता है। आज के दिन व्रत करने वाले दोपहर तक निराहार रहते हैं। फिर स्नान करके धूप, दीप, चंदन आदि से अनंत भगवान् की पूजा करते हैं। इसके बाद किसी एक अन्न का भोजन खाने की प्रथा है, इसलिए बहुत से लोग गेहूँ की पूड़ी के साथ मैदा से बनी मीठी सेंवई खाते हैं। अनंत भगवान् की पूजा करके दाहिनी भुजा पर सूत का बना अनंत भी बाँधते हैं। अनंत में तीन लड़ें होती हैं और चौदह गाँठें होती हैं। अनंत भगवान् अथवा परमात्मा तीनों लोक और चौदह भुवनों के स्वामी हैं, इसी तत्त्व को प्रकट करने के लिए अनंत इस प्रकार बनाया जाता है। इस व्रत की कथा इस प्रकार है—

दुर्योधन से जुए में पराजित होकर अन्य भाइयों और द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर को बारह वर्ष वनवास का कष्ट सहन करना पड़ा था। जब वे वन में निवास कर रहे थे एक दिन श्रीकृष्णचंद्रजी वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिर ने उनको अपनी विपत्तियों का हाल सुनाया और राज्य को फिर से प्राप्त कर सकने का उपाय पूछा।

भगवान् कृष्ण ने कहा—तुम अनंत चतुर्दशी का व्रत करो, इससे तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी। सतयुग में सुमंत नाम का वशिष्ठ गोत्री एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम दीक्षा और लड़की का शीला था। शीला रूप और गुण की निगाह से सचमुच ही सुशीला थी। कुछ समय बाद ब्राह्मण की स्त्री ज्वर के प्रकोप से मर गई। सुमंत ने अग्निहोत्र कर्म की रक्षा के लिए दूसरी स्त्री से विवाह किया, जिसका नाम दुःशीला था और जो सचमुच बड़ी ही कर्कशा तथा अपने नाम के अनुरूप ही आचरण वाली थी। वह घर में आकर शीला को कष्ट देने लगी। यह देखकर सुमंत ने उसका विवाह कर देना उचित समझा। कुछ ही

समय में कौडिन्य नाम के मुनि से उसकी भेंट हुई और उसने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया। कौडिन्य शीला को रथ में बिठाकर घर ले चला। रास्ते में संध्या हो गई और वे एक नदी के किनारे ठहर गये। रथ से उतरकर कौडिन्य संध्यावंदन करने चले गये। शीला ने देखा कि नदी के किनारे कुछ स्त्रियाँ पूजा कर रही हैं। उसने स्त्रियों के पास जाकर व्रत का परिचय जानना चाहा। स्त्रियों ने अनंत भगवान् के व्रत का माहात्म्य और विधान बतलाया जो सब मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है। चलते समय अनंत का सूत उन्होंने शीला की बाँह में बाँध दिया।

शीला अपनी ससुराल में पहुँचकर अनंतदेव का व्रत नियमपूर्वक करने लगी। विवाह के पूर्व कौडिन्य बड़ा दरिद्र था, पर अनंत भगवान् की उपासना से उसके घर में धन-धान्य की खूब वृद्धि होने लगी। एक दिन कौडिन्य ने शीला की बाँह में बँधा अनंत का सूत का धागा देखा जो पुराना हो जाने के कारण काला पड़ गया था। स्त्री के निषेध करने पर भी वह न माना और उसने धागे को तोड़कर आग में डाल दिया। अनंत भगवान् के इस अपमान के कारण ब्राह्मण की पुनः पहले जैसी अवस्था हो गई और उसे दरिद्र ने आ घेरा। दरिद्रता का कारण जानकर कौडिन्य वन को चला गया। रास्ते में उसने आम का एक वृक्ष देखा जिसमें फल लदे हुए थे, पर कोई उनको खाता न था। फिर दो नदियों को देखा जिनका जल एक-दूसरे में जाता था। उसने और भी आश्चर्यजनक घटनाएँ देखीं, पर अनंत भगवान् का पता न चला। अंत में थककर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

ब्राह्मण को इस प्रकार व्यथित देखकर अनंत भगवान् ने उसको दर्शन दिए और बताया कि तुम्हारी दुर्दशा का कारण अनंत का अपमान करना है। अब तुम घर जाकर नियम और विधिपूर्वक अनंत का व्रत करो तो यह दुर्दशा जाती रहेगी। उन्होंने यह भी बतलाया कि वह आमों का वृक्ष पूर्वजन्म में एक महान् पंडित था जो किसी को विद्या नहीं पढ़ाता था और वे दोनों

नदियाँ दो बहिनें थीं, जो परस्पर ही दान दे लिया करती थीं। ब्राह्मण ने घर जाकर बड़ी श्रद्धा के साथ सब नियमों का पालन करते हुए अनत का व्रत किया, जिससे कुछ समय में ही उसकी दशा पहले के समान संपन्न और सुखी हो गई।

अनंत का व्रत उस निराकार भगवान् की पूजा है जो सर्व-व्यापी है और जिसका न आदि है, न अंत है। भगवान् के निराकार रूप का ज्ञान प्राप्त करना दर्शन शास्त्र का विषय है और तत्त्वज्ञानी ही उसे भली प्रकार समझ सकते हैं। जीवन की गुत्थियों को सुलझाने और संसार के झूठे प्रलोभनों से बचने के लिए भी तत्त्वज्ञान की आलोचना करना प्रत्येक विवेकशील मनुष्य का कर्तव्य है और अनंत चतुर्दशी के मूल तत्त्व को समझकर दार्शनिक विषयों का अध्ययन करना हमारा कर्तव्य है।

❐ ❐

गोवर्धन और अन्नकूट

दीपावली के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा और अन्नकूट का त्यौहार मनाया जाता है। इसकी उत्पत्ति भगवान् कृष्ण के समय से मानी जाती है, जिसकी कथा लोक-प्रसिद्ध है। हम उसे संक्षेप रूप में नीचे देते हैं—

एक समय कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गौएँ चराते हुए नंद-नंदन श्रीकृष्णचंद्र गोवर्धन पहाड़ के निकट पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सब गोप और ग्वाल-बाल तरह-तरह के भोजन के पदार्थ बड़ी मात्रा में बनाकर पहाड़ के आस-पास बैठे हैं और पूजा की तैयारी कर रहे हैं। कृष्णजी के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि "हम देवराज इंद्र की पूजा का आयोजन कर रहे हैं। इंद्र महाराज की कृपा से जब भली प्रकार बरसात होती है, तो उसी से हमको धन-धान्य, चारे आदि की प्राप्ति होती है।" गोपों की बात सुनकर श्रीकृष्ण जी ने कहा "यह गिरि गोवर्धन ही वृष्टि करने वाला है और तुम्हारा प्रत्यक्ष हितकर्ता है, क्योंकि इसी की तलहटी में तुम्हारी गाएँ सुखपूर्वक चरती हैं और तुमको अमृतोपम दूध देती हैं। ब्रज के लोग प्राचीनकाल में भी इसकी पूजा किया करते थे और अब तुमको भी इसकी पूजा करने से लाभ होगा।" कुछ लोगों ने इंद्र की पूजा त्यागने से अति वृष्टि अथवा अनावृष्टि होने का भय भी प्रकट किया, पर श्रीकृष्ण के वचनों पर विश्वास करके उन्होंने इंद्र के स्थान में गोवर्धन की ही पूजा की। जब देवराज इंद्र ने यह समाचार सुना तो उनको बड़ा कोप हुआ और उन्होंने मेघों को बुलाकर आज्ञा दी कि ब्रज पर प्रलयकाल की वर्षा करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दो। इंद्र की आज्ञा पाकर मेघों ने मूसलाधार वर्षा आरंभ की, जिससे गोप-गोपी, ग्वाल-बाल सब घबड़ा गये और भगवान् कृष्ण की शरण में जाकर कहने लगे कि "इंद्र के कोप से हमारी रक्षा कीजिए।" कृष्णजी ने गोवर्धन छाते की तरह हाथ की कनिष्ठिका अँगुली पर उठा लिया और उसी के

नीचे सब लोग और गौएँ आदि भीषण वर्षा के प्रकोप से बचे रहे। जब सात दिन तक भीषण वर्षा करने पर भी ब्रज की कोई हानि नहीं हुई तो इंद्र को अपनी भूल मालूम हुई और वह आकर भगवान् कृष्ण के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा। इंद्र के चले जाने पर कृष्णजी ने लोगों को गोवर्धन का प्रभाव बतलाते हुए कहा "अब तुम लोग प्रति वर्ष गोवर्धन-पूजन करके अन्नकूट का उत्सव मनाया करो।"

वर्तमान समय में गोवर्धन पूजा के लिए घरों की स्त्रियाँ, लड़कियाँ और नव वधुएँ गोबर की एक बड़ी सी मूरत बनाती हैं, उसकी पूजा करती हैं और फिर मूसलों से उसे कूटती हैं।

× × ×

इस कथा और उपरोक्त विवरण से प्रतीत होता है कि गोवर्धन का त्यौहार गौ से उत्पन्न होने वाली संपत्ति की वृद्धि और विकास से संबंधित है। गायों से उत्पन्न होने वाले गोबर और मूत्र आदि खाद के लिए सर्वोत्तम माने गये हैं और उनके यथोचित उपयोग से खेतों की पैदावार में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती है। अमरीका के वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है और वहाँ की खेती में गोबर की खाद का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। गायों के गोबर और मूत्र में लक्ष्मी का निवास है, इसकी मनोरंजक कथा महाभारत के अनुशासन पर्व (८२-८४) में दी गई है। उसमें बतलाया है कि एक बार लक्ष्मी कहीं रहने योग्य स्थान न पाकर गायों के एक बाड़े में गई और उनसे प्रार्थना की कि तुम मुझे अपने यहाँ स्थान दो। पर गाएँ जानती थीं कि यह चंचला है, किसी जगह ठहरती नहीं। इसलिए उन्होंने उसे चले जाने को कहा। पर जब लक्ष्मी ने बार-बार प्रार्थना की तो गायों ने कहा—

अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि।
शकृन्मूत्रे वस त्वं भो ! पुण्यमेतद्धि नः शुभे।।

अर्थात् गौओं ने कृपा करके लक्ष्मी से कहा कि तुम हमारे गोबर और मूत्र में रहो, इससे तुम्हारी चंचलता दूर होगी।

इस प्रकार प्राचीनकाल से ही हमारे यहाँ गोबर और गोमूत्र का कीमती खाद के रूप में महत्त्व मालूम था और उसका व्यवहार भी किया जाता था। इसी के प्रभाव से उस समय यह देश संसार भर में सबसे अधिक समृद्ध और धन-धान्य संपन्न माना गया था। इसलिए गोवर्धन के शब्दार्थ 'गोबर + धन' को स्वीकार करके इस त्यौहार पर गाय से प्राप्त होने वाली खाद रूपी संपत्ति की योग्य व्यवस्था करने पर विचार करना चाहिए।

❑ ❑

देवोत्थान एकादशी

कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवोत्थान अथवा प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं। विष्णु भगवान् ने भाद्रपद शुक्ल एकादशी को शंखासुर नामक राक्षस को मारा था और युद्ध की थकावट को मिटाने के लिए क्षीर-सागर में जाकर सो गये। वे इसी कार्तिक शुक्ल एकादशी को उठे, इसी कारण इसका नाम 'देवोत्थान एकादशी' पड़ा।

गाँवों में आज के दिन गन्ने के खेतों में जाकर हवन किया जाता है। लोग गन्ने की पूजा करके अपने घर लाते हैं, देवता को चढ़ाकर तथा इष्ट-मित्रों को बाँटकर स्वयं भी खाते हैं। इस दिन से पहले गन्ने का खाना निषिद्ध माना जाता है और इसलिए कोई उसे तोड़ता भी नहीं। इस प्रथा के कारण किसानों को इस त्यौहार के पहले गन्ने के खेतों की रखवाली की विशेष आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

देवोत्थान एकादशी के व्रत के संबंध में नीचे लिखी कथा कही जाती है।

पूर्व त्रेता युग में महिष्मती नगरी का राजा कृतवीर्य हैहय के नाम से प्रसिद्ध था, जो अत्यंत प्रतापी और वैभवशाली था। उसके एक हजार रानियाँ थीं, पर किसी के पुत्र उत्पन्न न हुआ। तब कृतवीर्य ने ऋषि-मुनियों से पूछकर तरह-तरह के यज्ञ, जप, अनुष्ठान, दान आदि किये, जिससे संतान उत्पन्न हो सके; परंतु किसी तरह भी पुत्र नहीं हुआ। तब दुःखी होकर तपस्या करने के लिए वह जंगल में चला गया। साथ में उसकी रानी पद्मिनी, जो राजा हरिशचंद्र की पुत्री थी, वन में गई और वल्कल वस्त्र धारण करके तपस्या करने लगी। राजा दस वर्ष तक गदाधर भगवान् की पूजा करते हुए तप करता रहा, पर उसकी मनोकामना पूरी न हुई।

पद्मिनी एक दिन अनुसुइया के आश्रम में गई और वहाँ उसने अपना सब दुःख उसे कह सुनाया। अनुसुइया ने देवोत्थान एकादशी का व्रत करने को कहा और उसकी विधि समझा दी। पद्मिनी ने बिना जल-पान किये निराहार व्रत किया। रात्रि को जागरण और कीर्तन किया। भगवान् ने प्रगट होकर वर माँगने को कहा, तो पद्मिनी ने अपने पति की अभिलाषा के पूरी करने की याचना की। भगवान् के वर से कृतवीर्य के ऐसा पराक्रमी पुत्र हुआ कि उसके समान तीनों लोक में कोई न था। उसने रावण को भी हराकर कैदखाने में बंद कर दिया। तब पुलत्स्य ऋषि ने जाकर उसे छुड़ाया।

अन्य एकादशियों के व्रत की भाँति इस व्रत का उद्देश्य भी संयम-नियम का जीवन बिताना और परोपकार में दत्तचित्त रहना है। व्रत और उपवासों के जो महान् परिणाम बतलाये गये हैं, वे तभी सत्य हो सकते हैं, जब हम उनको आंतरिक प्रेरणा और सच्ची भावना से करें और उनमें जैसा बतलाया गया है, उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करें। यों एक दिन का भोजन त्याग देने या किसी देवता की पूजा कर लेने मात्र से कथाओं में बतलाये गये अनुसार असंभव कार्यों को भी संभव बनाने की शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। अतः हमको व्रतों की सच्ची भावना को ही अपने जीवन में व्यवहार में लाने का प्रयत्न सदैव करना चाहिए।

❑ ❑

भीष्म पंचक

यह व्रत कार्तिक शुक्ल एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक, ५ दिन रखा जाता है। इसी से इसका नाम 'भीष्म पंचक' है। इस दिन सबेरे ही स्नान करके पापों के नाश और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिए इस व्रत का संकल्प करे। घर में चारों ओर दरवाजों वाला मंडप बनाकर उसे गोबर से लीपे और फिर सर्वतोभद्र वेदी बनाकर तिल-युक्त कलश की स्थापना करे। पाँचों दिन वेदी पर घी का अखंड दीपक जलाए और १०८ आहुतियों का हवन करे। इस व्रत की कथा महाभारत में इस प्रकार कही गई है—

जिस समय भीष्म पितामह शर-शैया पर लेटे थे, उस समय श्रीकृष्ण के साथ पाँचों पांडव उनके पास गये। धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्मजी से उपदेश करने की प्रार्थना की, युधिष्ठिर की भावना को समझकर राजर्षि भीष्म ने राज-धर्म, मोक्ष-धर्म, वर्ण-धर्म आदि का उपदेश ५ दिन तक दिया, जिसे सुनकर सब अत्यंत संतुष्ट हुए। भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—राजन् आपने कार्तिक शुक्ल एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तक जो अमूल्य उपदेश दिये हैं, उनकी स्मृति-रक्षा करने के निमित्त मैं इस व्रत की स्थापना करता हूँ और इसका नाम 'भीष्म पंचक' रखता हूँ। जो कोई श्रद्धापूर्वक इसको करेंगे, उनके सारे कष्ट दूर हो जाएँगे और वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।

भीष्म पितामह का चरित्र अनुपम है और उनके समान अखंड ब्रह्मचारी दूसरा नहीं हुआ। उन्होंने अपने पिता की अभिलाषा की पूर्ति के लिए आजन्म विवाह न करने और इस प्रकार संतानोत्पत्ति से विरत रहने का प्रण किया था और लगभग १७० वर्ष की महान् आयु तक वे उस पर दृढ़ रहे। यही कारण है कि आज तक प्रत्येक हिंदू उनको अपना पूर्वज स्वीकार करके उनके नाम से तर्पण करना अपना कर्तव्य मानता

है, जिससे उसकी निस्संतान रहने की त्रुटि दूर हो जाये। देश और जाति के ऐसे आदर्श चरित्र पुरुषों का सम्मान करना हमारा परम कर्तव्य है, क्योंकि जो जाति अपने सुयोग्य पूर्वजों को आदर के साथ स्मरण नहीं करती वह कभी बड़ी नहीं बन सकती। इस दृष्टि से भीष्म-पंचक का त्यौहार बड़े महत्त्व का है।

❐ ❐

मकर संक्रांति

संक्रांति अथवा संक्रमण का अर्थ है, एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना। पृथ्वी जिस मार्ग से होकर एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है, उसका नाम ज्योतिषियों ने क्रांतिवृत रखा है। इस मार्ग को बारह भागों में बाँट दिया गया है, जिनको राशि कहते हैं। इन बारह राशियों के नाम क्रम से इस प्रकार हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन। सूर्य को एक राशि से दूसरी राशि में जाने में एक महीना लगता है और जिस दिन सूर्य एक राशि को पार करके दूसरी में प्रविष्ट होता है, उसी दिन संक्रांति मानी जाती है। वैसे तो धार्मिक जन सभी संक्रांतियाँ को पवित्र मानते हैं, पर मेष और मकर की संक्रांतियों विशेष महत्त्व की मानी जाती हैं। इनमें से पहली चैत या वैशाख के महीने में पड़ती है और दूसरी पौष या माघ में।

मकर संक्रांति शीतकाल के मध्य में पड़ती है, इसलिए उस दिन तिल आदि गर्म वस्तुएँ खाने और कंबल आदि दान देने का विशेष महत्त्व माना जाता है। उस दिन देश में खिचड़ी खाने और दान देने का भी रिवाज है। आज के दिन तिल का उबटन करना, तिल का हवन करना भी शुभ माना गया है।

पुराने समय में उपरोक्त दोनों संक्रांतियों के अवसर पर धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए हरिद्वार तथा प्रयाग में बड़ी-बड़ी सभाएँ हुआ करती थीं, जिनमें देश के बहुसंख्यक ज्ञानी, महात्मा, ऋषि, मुनि, पंडित आदि और अनेक राजा-महाराजा भी एकत्रित होकर विचार-विनिमय करते थे। इन अवसरों पर अनेक ऐसी धार्मिक और सामाजिक समस्याओं का निर्णय होता था, जो उस समय समाज के सम्मुख उपस्थित होती थीं। इस उपाय से समस्त हिंदू जाति को एक सूत्र में संगठित करने का मौका मिलता था और हिंदू-धर्म के आदर्श सिद्धांतों को देशव्यापी बनाने

में सहायता मिलती थी। उस समय प्रचार के वर्तमान साधन सुलभ नहीं थे, इसलिए ऐसे धार्मिक समारोहों के द्वारा ही देश के दूरवर्ती स्थानों तक विद्वानों के निर्णय पहुँचाए जाते थे। अब इन धार्मिक समारोहों ने परिवर्तन होते-होते मेलों का रूप धारण कर लिया है, जहाँ साधू लोग जुलूस बनाकर स्नान करते हैं और गृहस्थी उनके दर्शन कर लेते हैं। धर्म-चर्चा भी होती है, पर वह कथा वार्ता के रूप में ही होती है। यदि पुरानी परिपाटी को फिर से प्रचलित किया जाए, तो इन समारोहों से अब भी हिंदू जाति के संगठन का बहुत बड़ा काम लिया जा सकता है।

❑ ❑

शीतला अष्टमी

शीतला देवी की पूजा चैत्र कृष्ण अष्टमी को होती है। चैत्र और वैशाख हमारे देश में शीतला के प्रकोप के महीने समझे जाते हैं। इस अवसर पर छोटे बच्चों और अनेक बार बड़ी आयु वालों पर शीतला का आक्रमण होता है, जिससे उनको बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है और कभी-कभी वह घातक भी सिद्ध होता है। शीतला के कारण अनेक बच्चों की शक्ल-सूरत खराब हो जाती है और कितनों की दृष्टि-शक्ति जाती रहती है। इसलिए इस मौसम के शुरू होते ही शीतला से रक्षा पाने के उद्देश्य से शीतला अष्टमी मनाई जाती है।

उस रोज गोबर से घर लीपकर शुद्ध किये जाते हैं और पूजन में समस्त शीतल पदार्थों का ही व्यवहार किया जाता है। पूजा में जो पकवान चढ़ाये जाते हैं, वे भी शीतल अर्थात् एक दिन पहले के होते हैं। अष्टमी के दिन लोग चूल्हा नहीं जलाते और सप्तमी को संध्या काल के समय बनाये हुए भोज्य पदार्थों को ही खाया जाता है। वैसे आहारशास्त्र की दृष्टि से बासी पदार्थ तामसी हो जाते हैं और उनका खाना वर्जित है, पर वर्ष में एक इसी दिन उस नियम को भंग कर दिया जाता है। इस संबंध में नीचे लिखी कथा कही जाती है—

किसी जमाने में एक बार शीतला का बड़ा प्रकोप हुआ। नगर के राजा के लड़के को भी शीतला निकल आई। उससे थोड़ी दूर बसने वाले एक गरीब के लड़के को भी जोर की शीतला निकली थी। वह गरीब व्यक्ति भगवती का सेवक था और शीतला के प्रत्यक्ष होते ही वह इस संबंध के सब धार्मिक नियमों का पालन करने लगा। वह लड़के के आस-पास खूब सफाई रखता, जमीन को रोज शुद्ध गोबर और मिट्टी से लीपता, नमक का व्यवहार न करता, घर में कभी कढ़ाही न चढ़ाता, स्वयं नित्य शीतल वस्तुओं का व्यवहार करता और लड़के से भी कराता।

इसके प्रभाव से उसका लड़का बिना अधिक कष्ट पाये थोड़े ही दिनों में अच्छा हो गया।

उधर राजा के यहाँ भी लड़के की रक्षा के लिए बड़ा प्रबंध किया जा रहा था। पूजा-पाठ और हवन के सिवाय देवी के नाम पर बलिदान भी किया गया। पर राज-भवन में नित्य कड़ाही चढ़ती और तरह-तरह की मसालेदार तरकारियाँ, माँस, मद्य आदि बनाये जाते। उनकी खुशबू पाकर राजकुमार के मुँह में पानी भर आता और वह नौकरों से सब चीजें मँगाकर इच्छानुसार खाता रहता। इसका नतीजा यह हुआ कि हर तरह के उपाय करने, हजारों रुपया खर्च कर डालने पर भी राजकुमार अच्छा न हो सका, वरन् उसकी हालत खराब होती चली गई।

उस गरीब लड़के के चंगे हो जाने का समाचार सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे इसमें भगवती का अन्याय भी जान पड़ा, क्योंकि वह जानता था कि उनकी जैसी पूजा और भेंट राज-महल में हो रही है, गरीब के यहाँ उसका सौवाँ हिस्सा भी नहीं हो सकता। राजा के मन में ऐसा विचार आने पर भगवती ने रात को स्वप्न में उससे कहा कि "राजकुमार अभी तक इसीलिए जीवित है कि मैं तुम्हारी पूजा और भक्ति से प्रसन्न हूँ, किंतु केवल पूजा से ही काम नहीं चल सकता। पहले तुम उन सब नियमों का पालन करो, जो इस समय आवश्यक है, फिर मुझे दोष देना। इस अवसर पर ठंडी वस्तुओं का प्रयोग आवश्यक है, नमक का खाना हानिकारक है, छोंक, बघार की गंध से रोगी की तबियत चलती है और वह चाहे जो खा लेता है, इसलिए कढ़ाई चढ़ाना भी बंद रहना चाहिए। छुआछूत का भी पूरा ख्याल रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से दूसरों को भी यह बीमारी हो जाती है। इन सब बातों का पालन करने से ही तुम्हारा कल्याण होगा।" अब राजा को अपनी गलती मालूम हुई और उसने सब नियमों के पाले जाने की व्यवस्था की। इससे राजकुमार की बीमारी क्रमशः घटने लगी और थोड़े ही समय में वह निरोग हो

गया। फिर राजा ने अपने राज्य भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि लोग चैत्र कृष्ण अष्टमी को शीतला देवी की इसी विधि से पूजा करें।

× × ×

छुआछूत के रोगों में सफाई का पूरा ध्यान रखना और दूसरों को उससे बचाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। ये नियम शीतला के लिए ही लागू नहीं है, वरन् हैजा, प्लेग, कोढ़, खाज, दाद आदि सभी छूत वाले रोगों में पालन करना चाहिए। प्रायः देखने में आता है कि अनेक व्यक्ति ऐसे समय में अपने बचने की फिकर तो करते हैं, पर दूसरों के भले-बुरे का कुछ भी ध्यान रखना नहीं चाहते। ऐसे स्वार्थी लोग दैवी विपत्तियों में सबसे पहले फँसते और अधिक कष्ट भोगते हैं। छुआछूत के रोगों को न फैलने देने के लिए पहले से प्रतिकार के उपाय करना बुद्धिमानी की बात है और जब रोग फैल जाए तब उससे रक्षा पाने के लिए व्यक्तिगत के साथ सामूहिक उपायों को भी करना हम सबका कर्तव्य है।

❑ ❑

परिशिष्ट

● अन्य व्रत और त्यौहार

यहाँ तक हमने जिन त्यौहारों और व्रतों का वर्णन किया है, उनके सिवाय भी बहुत से व्रत आदि जनता में प्रचलित हैं। इनमें से अनेक तो ऐसे हैं, जो अभी सौ-दो सौ वर्ष के भीतर किसी घटनावश किसी एक प्रदेश की जनता में चल पड़े हैं और उनका उल्लेख किसी प्राचीन ग्रंथ या शास्त्र आदि में नहीं है। जैसे हमको व्रतों और त्यौहारों की एक पुस्तक में "औसान बीबी की पूजा" 'आस माई की पूजा', 'गाजबीज की पूजा', 'दशारानी का व्रत', 'पूजूनो पूनो', 'अहोई आठें', 'बछा बाछा व्रत' आदि अनेक ऐसे व्रतोत्सवों का उल्लेख मिला, जो न तो सब प्रदेशों में मिलते हैं और न जिनका नाम शास्त्रों में आया है। इसी के साथ-साथ पुराणों में बहुसंख्यक ऐसे व्रत दिये गये हैं, जिनका प्रचार अब सर्वथा बंद हो चुका है और जिनको कोई जानता ही नहीं। इस प्रकार हिंदुओं के व्रत और त्यौहारों की पूर्ण संख्या बहुत बड़ी है और उन सबका वर्णन करने से पुस्तक का विस्तार अनावश्यक रूप से बढ़ सकता है। तो भी हम यह आवश्यक समझते हैं कि धर्म शास्त्रों में वर्णित व्रतोत्सवों की एक सूची यहाँ दे दी जाए, जिससे पाठक उनका साधारण परिचय पा सकें और जिसको आवश्यकता हो वह उनका विस्तृत विवरण 'व्रतराज' आदि किसी बड़े ग्रंथ से मालूम करके उन पर आचरण कर सके।

(१) **अक्षय नवमी**—कार्तिक शुक्ल नवमी को आँवले के वृक्ष की पूजा की जाती है। इसे 'धात्री नवमी' अथवा 'कुष्मांड नवमी' भी कहते हैं।

(२) **अखंड एकादशी**—आश्विन शुक्ल एकादशी का व्रत, वामन पुराण के अनुसार।

(३) **अंगारक चतुर्थी**—जिस किसी मास में मंगलवार को चतुर्थी पड़े तो मत्स्य पुराण के अनुसार उस दिन अंगारक चतुर्थी का व्रत करना चाहिए।

(४) **अचला सप्तमी**—यह स्त्रियों को सौंदर्य और सौभाग्य देने वाला व्रत है, जो माघ शुक्ल सप्तमी को किया जाता है।

(५) **अदारिद्र षष्ठी**—स्कंद पुराण के अनुसार एक वर्ष तक प्रत्येक षष्ठी को यह व्रत करना होता है।

(६) **अर्द्धोदय व्रत**—स्कंद पुराण के अनुसार माघ मास की अमावस्या के दिन यदि रविवार, व्यर्तायात योग और श्रवण नक्षत्र हो तो वह अर्द्धोदय योग और उस दिन व्रत रखना बड़ा पुण्यदायक होता है।

(७) **अमावस्या व्रत**—कूर्म पुराण के अनुसार प्रत्येक अमावस्या को शिवजी का यह व्रत करना चाहिए।

(८) **अरुंधती व्रत**—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया तक किया जाता है। यह स्त्रियों को वैधव्य से बचाने वाला है।

(९) **अशून्य शयन द्वितीया व्रत**—भविष्य पुराण के अनुसार सावन से लेकर चौमासे भर हर कृष्ण पक्ष की द्वितीया को यह व्रत किया जाता है।

(१०) **अहोई आठें**—कार्तिक कृष्ण अष्टमी को संतान की कुशलता के लिए व्रत रखा जाता है।

(११) **आदित्य व्रत**—साल भर तक प्रत्येक रविवार का व्रत।

(१२) **कजरी व्रत**—श्रावण शुक्ल सप्तमी को जौ बोये जाते हैं और व्रत रखा जाता है।

(१३) **करवा चौथ**—कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को स्त्रियों का व्रत।

(१४) **कार्तिक स्नान**—कार्तिक के महीने भर सूर्योदय से पहले स्नान करके संयमपूर्वक रहना पड़ता है तथा दान-पुण्य करना पड़ता है।

(१५) **कार्तिकीय पूर्णिमा**—आँवले के वृक्ष के नीचे भोजन करने का विशेष माहात्म्य माना जाता है।

(१६) **काल भैरव अष्टमी**—मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को भैरवजी की जयंती मनाई जाती है और व्रत रखा जाता है।

(१७) **कोजागर व्रत**—आश्विन कृष्ण पूर्णिमा को मनाया जाता है, इसको शरद पूर्णमासी भी कहते हैं। कोजागर का शुद्ध रूप है 'कोजागृति ?' अर्थात् कौन जग रहा है। आज जागरण करने का विशेष माहात्म्य है।

(१८) **कूर्म द्वादशी व्रत**—भविष्य पुराण के अनुसार पौष शुक्ल द्वादशी को किया जाता है।

(१९) **गनगौर**—चैत्र शुक्ल तृतीया को सौभाग्यवती स्त्रियाँ गौरा-पार्वती का पूजन करती है।

(२०) **गीता जयंती**—मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी को भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था, उसी का उत्सव मनाया जाता है।

(२१) **गोविंद द्वादशी व्रत**—पुष्य नक्षत्र युक्त फाल्गुन कृष्ण द्वादशी को गोविंद द्वादशी कहते हैं।

(२२) **चंडिका व्रत**—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को यह व्रत साल भर तक करना पड़ता है।

(२३) **चातुर्मास्य व्रत**—भविष्योत्तर पुराण के अनुसार यह व्रत आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक किया जाता है।

(२४) **चंद्रव्रत**—वाराह पुराण में बतलाये विधानानुसार यह व्रत प्रत्येक पूर्णिमा को पंद्रह वर्ष तक किया जाता है।

(२५) **चंद्रायण व्रत**—चंद्रमा के ह्रास के साथ आहार में ह्रास और चंद्रमा की वृद्धि के साथ आहार में वृद्धि करके एक महीने में यह व्रत पूरा किया जाता है। यह महा पातकों को नष्ट करने वाला है।

(२६) **जानकी जयंती**—फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को सीता महारानी की जन्म-तिथि मनाई जाती है।

(२७) **जीवत्पुत्रिका व्रत**—आश्विन शुक्ल अष्टमी को संतान के हितार्थ रखा जाता है।

(२८) **तिल द्वादशी व्रत**—माघ मास की कृष्ण पक्ष की द्वादशी को पूर्वाषाढ़ा या मूल नक्षत्र हो तो यह व्रत रखा जाता है।

(२९) **तुलसी-विवाह**—कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन तुलसी के साथ विष्णु के विवाह का उत्सव होता है। तुलसी का एक नाम विष्णु-प्रिया भी है।

(३०) **त्र्यंबक व्रत**—चतुर्दशी तिथि में भगवान् शंकर के लिए यह व्रत किया जाता है।

(३१) **त्रिपुरोत्सव**—यह कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को जिस दिन भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का नाश किया था।

(३२) **दत्तात्रेय जयंती**—मार्गशीर्ष पूर्णिमा को भगवान् दत्तात्रेय की जन्म-तिथि।

(३३) **नरसिंह चतुर्दशी व्रत**—वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को नरसिंह अवतार की जयंती।

(३४) **नागपंचमी**—श्रावण शुक्ल पंचमी को नागदेवता की पूजा।

(३५) **परशुराम जयंती**—भगवान् के छठे अवतार महातेजस्वी परशुराम जी की जयंती का उत्सव।

(३६) **बहुला व्रत**—भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी को स्त्रियों द्वारा संतानोत्पत्ति निर्मित्त किया जाता है।

(३७) **भीमाष्टमी**—माघ शुक्ल अष्टमी को जिस दिन भीष्म-पितामह ने मुक्ति पाई।

(३८) **भौमवार व्रत**—स्कंद पुराण के अनुसार प्रत्येक मंगलवार को यह व्रत करना होता है।

(३९) **महालया**—आश्विन कृष्ण पक्ष की अमावस्या को जिस दिन पितृगण पुनः अपने लोक में वापिस जाते हैं।

(४०) **महालक्ष्मी व्रत**—भाद्रपद शुक्ल अष्टमी से आश्विन कृष्ण अष्टमी में तक सोलह दिन मे महालक्ष्मी के पूजन का अनुष्ठान पूर्ण होता है।

(४१) **माघी पूर्णिमा**—माघ मास के अंतिम दिन का स्नान जो विशेष रूप से तीर्थराज प्रयाग में पुण्य देने वाला माना जाता है।

(४२) **मातृ नवमी व्रत**—भविष्योत्तर पुराण क अनुसार यह व्रत आश्विन कृष्ण पक्ष की नवमी को माता के प्रीत्यर्थ किया जाता है।

(४३) **मौन व्रत**—यह व्रत स्कंद पुराण के अनुसार श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को रखा जाता है।

(४४) **मौनी अमावस्या**—माघ कृष्ण अमावस्या को तीर्थराज प्रयाग में मनाई जाती है। इस दिन मौन रहकर धार्मिक कृत्य करंने का विशेष माहात्म्य है।

(४५) **रथयात्रा**—आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को भगवान् की सवारी निकाली जाती है।

(४६) **लोलार्क षष्ठी**—यह बलदाऊजी की जन्म तिथि है। पूर्वी जिलों में इसे 'ललही छट्ट' के नाम से पुकारा जाता है। पुत्रों के कल्याणार्थ स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और बैलों द्वारा जोती-बोई कोई चीज नहीं खातीं।

(४७) **वट सावित्री व्रत**—जेठ सुदी तेरस से पूर्णमासी तक किया जाता है। यह सौभाग्यवती स्त्रियों का व्रत है। इसी दिन सावित्री ने अपने पति सत्यवान् की यमराज से प्राण-रक्षा की थी।

(४८) **वामन द्वादशी**—चैत्र शुक्ल द्वादशी को भगवान् वामन अवतार की जयंती।

(४९) **वैकुंठ चतुर्दशी**—कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को विष्णु भगवान् की पूजा का व्रत है।

(५०) **व्यास पूजा अथवा गुरु पूजा**—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को गुरु की पूजा का त्यौहार।

(५१) **शनि व्रत**—प्रत्येक शनिवार को शनि ग्रह के प्रीत्यर्थ किया जाता है।

(५२) **संतान सप्तमी**—भाद्रपद शुक्ल सप्तमी को शिव-पार्वती की पूजा की जाती है। इसे मुक्ताभरण व्रत भी कहते हैं।

(५३) **संकट चौथ**—गणेशजी का यह व्रत माघ कृष्ण चतुर्थी को रखा जाता है। इस दिन तिल चढ़ाने का माहात्म्य है।

(५४) **सत्यनारायण व्रत**—सत्यनारायण के व्रत की कोई तिथि नियत नहीं है, तो भी एकादशी, पूर्णमासी, अमावस्या की तिथियाँ उत्तम मानी गई हैं। व्रत के साथ कथा भी सुनी जाती है।

(५५) **सूर्य षष्ठी**—कार्तिक शुक्ल षष्ठी को यह व्रत संतान की दीर्घायु के लिए किया जाता है।

(५६) **सोमवार व्रत**—प्रत्येक सोमवार को भगवान् शंकर के प्रीत्यर्थ प्रदोष व्रत रखने का नियम है।

(५७) **स्वर्ण-गौरी व्रत**—श्रावण शुक्ल तृतीया को रखा जाता है। इसे 'सुकृत तृतीया' भी कहते हैं।

(५८) **हरितालिका**—यह स्त्रियों के सौभाग्य का सबसे बड़ा व्रत माना जाता है। इसमें दिन-रात जल भी ग्रहण नहीं किया जाता। यह भाद्रपद शुक्ल तृतीया को किया जाता है।

(५९) **हनुमान जयंती**—चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को महा पराक्रमी हनुमानजी की जयंती मनाई जाती है।

(६०) **हरिशयनी एकादशी**—आषाढ़ शुक्ल एकादशी को यह व्रत रखा जाता है, जो बड़े-बड़े संकटों का निवारण करने वाला है।

इनके अतिरिक्त भविष्य पुराण में और भी अनेक व्रतों का उल्लेख है, जिनका अब कहीं प्रचलन नहीं है। समय के प्रभाव से और समाज की परिस्थितियाँ बदल जाने से जनता उनको न करती है न जानती है। हाँ, कोई एक व्यक्ति अपनी विशेष मनोकामना के लिए उनको कर सकते हैं। इससे हम केवल उनके नाम मात्र यहाँ दिये देते हैं, जिनको विवरण देखना हो वे उक्त पुराण में देख सकते हैं—

(६१) रथ सप्तमी
(६२) अपराजिता सप्तमी
(६३) मार्तंड सप्तमी
(६४) शकट व्रत
(६५) तिलक व्रत
(६६) अशोक व्रत
(६७) करवीर व्रत
(६८) कोकिल व्रत
(६९) भद्र व्रत
(७०) ललिता व्रत
(७१) उमा-महेश्वर व्रत
(७२) सौभाग्य शयन व्रत
(७३) अनंत फलदा तृतीया
(७४) शांति व्रत
(७५) सरस्वती व्रत
(७६) श्री पंचमी व्रत
(७७) विशोक षष्ठी
(७८) कमल षष्ठी
(७९) कुक्कुटी व्रत
(८०) बुधाष्टमी
(८१) दूर्वाष्टमी
(८२) सोमाष्टमी
(८३) श्री वृक्ष नवमी
(८४) उल्का नवमी
(८५) दशावतार व्रत
(८६) रोहिणी व्रत
(८७) अवियोग व्रत
(८८) मल्ल द्वादशी
(८९) अखंड द्वादशी
(९०) मदन द्वादशी
(९१) अंकपद व्रत
(९२) दुर्गंध नाशन व्रत
(९३) यमादर्शन व्रत
(९४) अनंग त्रयोदशी
(९५) पाली व्रत
(९६) रंभा व्रत
(९७) श्रवणिका व्रत
(९८) नक्त व्रत
(९९) नक्षत्र-पुरुष व्रत
(१००) ग्रह-नक्षत्र व्रत

हिंदुओं के व्रत और उपवासों की यह सूची भी संपूर्ण नहीं है। वर्ष की प्रत्येक एकादशी पवित्र मानी जाती है और उस दिन अन्न का भोजन करने वाले को दोष लगता है, ऐसा शास्त्र का वचन है। एकादशी मुख्यतया वैष्णव संप्रदाय का व्रत माना जाता है। इसी प्रकार शिव के उपासक वर्ष की प्रत्येक द्वादशी के दिन प्रदोष व्रत करना आवश्यक समझते हैं। सौर-संप्रदाय वाले (सूर्य के उपासक) प्रत्येक संक्रांति को सूर्य की पूजा करते हैं। श्रावण के प्रत्येक रविवार को अनेक हिंदू सूर्य की पूजा जल, दूध, घी, तिल, सरसों, चावल और कुश से करते हैं। प्रत्येक मास की चौथ गणेशजी के व्रत का दिन माना जाता है। अष्टमी और चतुर्दशी की तिथियाँ भी अनेक संप्रदायों में पवित्र पर्व की भाँति मानी जाती हैं। अनेकों लोग प्रत्येक रविवार या मंगल या शनिवार का व्रत भी नियम से रखते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो वर्ष का शायद ही कोई दिन ऐसा बचेगा, जो एक धार्मिक हिंदू की दृष्टि में पवित्र और पूजनीय न हो। इसीलिए कहा गया है कि एक हिंदू का समस्त जीवन ही धर्ममय होता है और उसके सभी क्रिया-कलाप धर्म की पूर्ति के लिए होते हैं। पर यह बात तभी सत्य समझी जा सकती है, जब हम इन व्रतोत्सव और त्यौहारों के मूलतत्त्व को हृदयंगम करके सच्चे हृदय से उनको मनाएँ और उसके अनुसार अपना आचरण भी रखें। हमारे पूर्वजों ने इन व्रतोत्सवों की स्थापना इसीलिए की थी कि उनके द्वारा हमको अपने धार्मिक कर्तव्यों का स्मरण होता रहे और हम सत्य, न्याय, त्याग, परोपकार के सिद्धांतों पर चलकर अपना और अपने आस-पास वालों का भी हित-साधन करते रहें। आशा है पाठक इस सच्चाई का सदैव ध्यान रखेंगे।

मुद्रक युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा